

पल्लवी प्रकाशन

पंगु

उपन्यास

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिन्दी अनुवाद

रामेश्वर प्रसाद मण्डल

पंगु

मैथिली साहित्य में चर्चित कृति

साहित्य अकादेमी पुरस्कार से पुरस्कृत मैथिली कृति

पंगु

(उपन्यास)

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिन्दी अनुवाद

रामेश्वर प्रसाद मण्डल



पल्लवी प्रकाशन

बेरमा/निर्मली

PANGU : Hindi translation by Rameshwer Prasad Mandal of Sahitya Akamemi awarded author Jagdish Prasad Mandal's Maithili prominent novel 'Pangu, Pallavi Parkashan, Berma/Nirmali, Bihar, 2022, ₹ 250

ISBN : 978-93-93135-17-9

प्रथम संस्करण : 2022
मूल्य : ₹ 250 (दो सौ पचास) मात्र

प्रकाशक : पल्लवी प्रकाशन
तुलसी भवन, जे.एल.नेहरू मार्ग, वार्ड नं. 06, निर्मली
जिला- सुपौल, बिहार : 847452

वेबसाइट : http://pallavipublication.blogspot.com
ई-मेल : pallavi.publication.nirmali@gmail.com
मोबाइल : 6200635563, 9931654742

मुद्रक : मानव आर्ट, निर्मली (सुपौल), पिन : 847452
आवरण सज्जा : श्रीमती पुनम मण्डल

समर्पण

'जान है तो जहान है' -इस अनमोल कड़ी में मेरे जीवन को सँवारने वाली मेरी भाभी 'शोभा देवी', शैक्षणिक गुरुदेव प्रो. हनुमान प्रसाद शर्मा, डीन, भू. ना. मण्डल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, पिता और माली- मुंशी सुन्दरलाल मण्डल, मेरी अर्द्धांगिनी और मेरी सखी' 'पद्मावती देवी' तथा अट्टालिकाओं में नहीं झोपड़ियों में, मन्दिरों में नहीं कुटियों में प्रेम को खोजने वाले मानवता के ऐसे धनी महामानवों के प्रति सादर समर्पित..

- रामेश्वर प्रसाद

अपनी बात

आज मैं फूले नहीं समा रहा हूँ, क्योंकि एक नेक काम करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं वर्षों से इस ऐतिहासिक मौका का इन्तजार कर रहा था कि काश! मुझे महान साहित्यकार एवार्ड वीर सामाजिक धरातल को विशुद्ध करने वाले मानवता के सच्चे प्रतिमूर्त्ति बेजोर रचनाकार आदरणीय श्री जगदीश प्रसाद मण्डल द्वारा रचित एवम् पुरस्कृत पोथियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद करने का पुण्य अवसर प्राप्त हो सके। इसी भावना के परिपेक्ष्य में मैंने साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली द्वारा पुरस्कृत मैथिली में लोकप्रिय उपन्यास 'पंगु' का अनुवाद हिन्दी में किया है।

सज्जनों! वाल्मीकि कृत रामायण संस्कृत भाषा में लिखा गया है, जो भाषायिक कठोरता के कारण अधिक-से-अधिक पाठकों तक नहीं पहुँच सका, परन्तु जब गोस्वामी तुलसी दास जी ने उसे जन-भाषा, सुबोध-भाषा, सुग्राह्य-भाषा में 'राम चरित मानस' शीर्षक में लिखा, तो काफी लोकप्रिय हुआ, क्योंकि भाषा का क्षेत्र बढ़ने से पाठकों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। वस्तुत: भाषा- स्थानान्तरण एक ऐसा उत्तल दर्पण है, जो दृष्टि-क्षेत्र को विस्तार करता है। मेरे ख्याल में उपयोगी कृतियों का अन्य दूसरी भाषाओं में अनुवाद किया जाय, जिससे सुधी पाठकों की संख्या में महत वृद्धि होगी और रचनाकारों की कृतियाँ अधिक सुवासित, चर्चित और लाभदायक होगी।

मैंने आदरणीय जगदीश बाबू को पढ़ा है। ये गुदरी के लाल हैं,

मधुबनी के हीं नहीं मिथिला के मणि-रत्न हैं और साहित्य-नक्षत्र के ध्रुवतारा हैं, जो दिशा निर्देशित करता है। जगदीश बाबू भी आज यही कर रहे हैं। अहा! क्या लिखते हैं। क्या, दिशा निर्देशित करते हैं! मैं ऐसे समाज-सेवी अग्रदूत एवम् साहित्य-शिल्पी को शत्-शत् नमन करता हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे द्वारा हिन्दी में अनूदित प्रसिद्ध एवं साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास 'पंगु' को पढ़कर सुधी पाठकगण एवम् सज्जनवृन्द लाभान्वित होंगे। मैं आपका सुधासम सुझाव और आशीर्वाद चाहता हूँ, ताकि मैं अधिक-से-अधिक कृतियों का अनुवाद कर सकूँ।

इस पुनीत कार्य के लिए मुझे प्रेरित करने वाले महान साहित्यकार आदरणीय श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के प्रति, उत्साह बढ़ाने वाले डॉ उमेश मण्डल के प्रति, हिन्दी के मर्मज्ञ परम श्रद्धेय गुरुदेव रामजी प्रसाद मण्डल के प्रति, हिन्दी के ख्याति प्राप्त मंचीय सलाहकार प्रो. धीरेन्द्र कुमार के प्रति, परम सहयोगी प्रसिद्ध लेखक राजदेव मण्डल के प्रति, मनोबल बढ़ाने वाले प्रदीप पुष्प के प्रति, रामश्रेष्ठ दिवाना के प्रति, मनोज कुमार मण्डल के प्रति, नन्द विलास राय के प्रति, पल्लवी जैसे उदयमान लेखिका की सक्रियता के प्रति, पूनम चाँद की भाँति आवरण सज्जा देने वाली पुनम मण्डल के प्रति, शिक्षक जगदीश मण्डल के प्रति एवम् मेरे प्रति सहानुभूति और सहयोग दर्शाने वाले सभी सलाहकारों के प्रति सादर आभार व्यक्त करता हूँ।

कोई भी पूर्ण नहीं होता है। त्रुटि के लिए क्षमा याचना।

- रामेश्वर प्रसाद मण्डल

सुन्दर भवन, निर्मली

20 सितम्बर 2022

‘पंगु’क अनुवादक मादे

‘पंगु’ उपन्यासक अनुवाद रामेश्वर बाबू करता, चर्च सुनि मनमे तृप्ति भेल। तृप्ति ई नइ भेल जे रामेश्वर बाबू, बिहारक प्रतिष्ठित भाषा माने खड़ी बोली हिन्दीकेँ सभ राज्यसँ नीक मानल गेल अछि, हिन्दीमे उजागर करता, तृप्ति ई भेल जे रामेश्वर बाबू हाइ स्कूलसँ सेवा निवृत्त शिक्षक छैथ, जिनकामे एहेन उत्साह अहू उमेरमे छैन। ओना, हुनकोसँ बेसी तृप्ति भेटैत, जँ मिडिल स्कूलक शिक्षक अनुवादक होइतैथ।

अपन समयक जे धुमसाही चलि रहल अछि, तइमे अनूदित ‘पंगु’ अखन नहि पढ़ि पेलौं अछि, मुदा जेते जल्दी विद्वज्जनक हाथ पोथी पड़त, ओते राय-विचारक तँ आशा अछिए किने।

अन्तमे, यएह कहब जे जहिना राहुलजी माने राहुल सांकृत्यायन, अपने पाठक बन्धुकेँ कहलैन जे ‘भाय, जहिना लिखैमे मेहनत हम केलौं, तहिना पढ़ैमे, सुधारिकऽ पढ़ैमे, सहयोग करू।’ अही आशाक संग... ।

-जगदीश प्रसाद मण्डल

बेरमा

20 सितम्बर 2022

1.

मध्य मिथिला के सीतापुर गाँव में हरिचरण का जन्म हुआ। जिस प्रकार अन्य-अन्य लोगों का जन्म गुलाम देश में यानी अंग्रेज-शासित देश में होता आ रहा था, उसी प्रकार हरिचरण के पूर्वजों का जन्म भी होता आ रहा था और हरिचरण का भी जन्म हुआ। वैसे तो गुलाम देश भी भौगोलिक दृष्टि से एक समान नहीं होता है, इनके बीच अच्छा से अच्छा और खराब से खराब मिट्टी-पानी के गुण पाये ही जाते हैं, जिससे अच्छा से अच्छा और खराब से खराब उर्वर शक्ति रहने से अच्छा-खराब दोनों तरह का पैदावार होता ही है।

सीतापुर गाँव न तो राजस्थान के समान है, जहाँ झाड़ीनुमा पेड़-पौधा छोड़कर केवल लम्बा-सुडौल वृक्ष हीं होते हैं और न साइबेरिया के समान ठण्ढा मुल्क की भाँति है, जहाँ काई-लिचेन सरीखे बौने पेड़-वृक्ष छोड़कर कोई भी लम्बा-सुडौल वृक्ष नहीं होता है।

सीतापुर एक ऐसा मुल्क है जहाँ छोटा-से-छोटा और बड़ा-से-बड़ा पेड़ हमेशा होते आ रहे हैं। यहाँ की मिट्टी-पानी मीठा-से-मीठा फल पैदा करता है और सुन्दर से सुन्दर लकड़ियाँ देता है। जो घर के साज-सज्जा से लेकर गाँव की शोभा भी बढ़ाई हुई है। उसी प्रकार भूमि भी दो प्रकार की होती है। एक सुभूमि और दूसरा कुभूमि। सुभूमि का अर्थ जीवित भूमि और कुभूमि का अर्थ मरुभूमि होता है। जिसको रेगिस्तान भी कहते हैं।

सुभूमि और कुभूमि, दोनों का अपना-अपना गुण-धर्म भी होता है। स्वभावत: गुण और धर्म दोनों अभिन्न वस्तु होते हैं, लेकिन इस जगह भी अवगुण अपना रूप बदल ही लेता है। जिस प्रकार मिथिला की उत्तरी सीमा- पर्वत शृंखला से भरी हुई है, जिसके बीच हिमालय पहाड़ के समान और पर्वत हैं और कैलाश के समान भूमि भी है, जिसके बीच मानसरोवर के समान सरोवर नहीं है, ऐसा भी तो नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार दक्षिणी सीमा की नदियों के समूह के बीच गंगा जैसे पवित्र नदी भी है।

सीतापुर गाँव की सीमा भी मिथिला की ही सीमा के बीच अपनी सीमा निर्धारित कर चुकी है, जिस प्रकार गाँव का नाम 'सीतापुर' है उसी प्रकार गाँव की भौगोलिक बनावट भी है। जिसमें सैकड़ों रंग के फूल-फल से लेकर सैकड़ों किस्म के अन्न-अनाज और सब्जियों की उपज भी होती है।

वैसे तो मिथिलांचल में अनेक नदियाँ भी बहती हैं, जिनके जल पवित्र से पवित्र और अपवित्र से अपवित्र भी होते हैं। वैसे दोनों की पहुँच गंगा में होती हीं है, जिससे दोनों घुल-मिलकर पवित्र बनकर, संग-संग बहकर, गंगासागर में पहुँचकर समुद्र में समा भी जाती हैं।

हजार बीघा जमीन के आँत पेट वाला गाँव सीतापुर में जिस प्रकार सभी किस्मों की भूमि है– उच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर की भूमि, ठीक उसी प्रकार उस भूमि से उपज भी सभी तरह की होती है। वैसे तो सालो भर बहने वाली नदी, जिसको चलन्त नदी कहते हैं, वैसी नदी सीतापुर में एक भी नहीं है। इसका अर्थ यह भी तो नहीं हो सकता कि सीतापुर नदीविहीन गाँव है। सीतापुर में दो नदियाँ हैं। जिनमें उत्थर-अगहरी रहने के कारण एक नदी मात्र बरसात तक ही बहती है, जिसको चौमसिया नदी एक गाँव से लेकर दूसरे गाँव तक के लोग कहते हैं। गाँव के लोग इस

कारण से कहा करते हैं कि वे गाँव में रहकर अपनी-अपनी आँखों से देखते भी हैं, साथ-साथ उससे जो हानि-लाभ होता है, भोगते भी आ रहे हैं। और दूसरे-दूसरे गाँव के लोग इस कारण से कहते हैं कि अन्य दूसरे गाँवों से होकर यह नदी रास्ता बना चुकी है और बहती भी है। लेकिन जो दूसरी नदी है, वह बारह महीनों तक बहने वाली नदी नहीं है, फिर भी गहरी होने के कारण आषाढ़ से अगहन तक बहती रहती है। इसलिए इसे सभी लोग छमाही नदी कहते हैं। जिस प्रकार खेत-खलिहान अगहन में अन्न से अच्छादित रहता है और आषाढ़ में खाली हो जाता है, उसी प्रकार वह नदी पहाड़ी पानी से लेकर धरती के पानी के बीच अपना धार बनाकर बहती हीं है। बर्फ से निर्मित पानी जिस तरह पवित्र होता है, उसी तरह उस पानी में सुन्दरता की चमक रहती है, इसके विपरीत बर्षा के जल का बहाव होता है, जो मेघ से बरसकर पत्थर और मिट्टी को धो-परवारकर बहती है, जिससे उसका रंग मटमैला रहता है। मटमैला एक रूप होता है और गन्दगी से भरा हुआ गन्धपन दूसरा रूप होता है। बिना मटमैला और गन्ध रहने से गन्दा का दूसरा रूप होता है। खैर, जो है जहाँ है। लेकिन सीतापुर के बीच जो नदी है, वह मिट्टी-पत्थर से धोया हुआ पानी की है। इस कारण इसे गन्दा नहीं हीं कहा जा सकता है। गेन्दा फूल के समान उसकी आँखों में चमक है हीं। जिसमें बहती नदी के अतिरिक्त अनेक रंगों के जल-स्त्रोत भी है हीं।

मिथिलांचल के बीच का गाँव सीतापुर भी तो है। इसी कारण गाँव की अनेक विशेषताएँ अभी तक सीतापुर में दृष्टिगोचर हो रही है। गाँव तो गाँव हीं होता है। लेकिन उसमें भी उचित बोलने वाले सकोर और कुत्ता के समान भौंकने वालों सा गुण भी पाये जाते हैं न। माने तो तीनों गुणों से सम्पन्न गाँव भी है और अलग-अलग गुणवाला गाँव भी हैं। इनमें अन्य से अलग सीतापुर गाँव है। जिस तरह जमीन का रकबा हजार बीघा वाला जमीन है, उसी प्रकार अठारह गण्डा जाठ (जाइठ) वाले तालाब भी हैं।

जिस प्रकार अठारह गण्डा जाठ वाला तालाब सीतापुर में है, उसी प्रकार दो बड़ा-बड़ा गहरा पानी वाले तालाब और कई दर्जन छोटा-छोटा गहरा पानी वाला तालाब भी हैं, परन्तु ये सब बिना जाठ के हैं। लेकिन उनमें से दोनों बड़े तालाब जो हैं, उसको लोग दैत्य के द्वारा खुदा तालाब कहते हैं और शेष छोटे-छोटे जो कई तरह के तालाब हैं, उन सबको चभच्चा, कोचाढ़ी से लेकर डोह-डाबर कहते हैं। बन्धु! भूमि तो भूमि है न.! उसमें भी सीतापुर गाँव की भूमि, जो मिथिला के मध्य अवस्थित गाँव है। यहाँ की भूमि में ये गुण पाये हीं जाते हैं कि जो कुआँ-इनार के रूप में जिस तरह पाताल से पानी लाते हैं, उसी प्रकार खेत-खलिहान से लेकर आकाश तक के जल को संचित भी करते हैं।

सीतापुर गाँव में सौ-सौ बीघा का दो-दो बधार (चौरी) भी हैं, जिनमें छह-सात महीने तक पानी का जमाव रहता है। जिसमें अन्न-अनाज, फूल और फल उपजते तो हैं हीं तथा उसकी रक्षा भी होती है। अन्न-अनाज फूल और फल तो धरती पर होते हैं। वैसी धरती पर जहाँ पानी आकर कुछ दिनों तक मेहमान के रूप में पहुनाई करता है या उड़कर आकाश में चला जाता है या धीरे-धीरे पाताल की ओर चला जाता है या ऊपर से झर-झर कर उसी निचले खेत में– यानी बधार में चला जाता है। मान्य बात यह है कि आकाश से धरती पर उतरकर वही पानी उड़-उड़ कर आकाश की ओर बढ़ता है और पाताल की ओर भी सरक कर समुद्र से भी गठजोड़ कर लेता है। खैर, जो अपने मन में आता है वह अपना करता है। बिना मतलब का सीतापुर वालों का इतना हिसाब लेने का क्या काम है। उनलोगों को इतना से हीं मतलब है कि बढ़िया-से-बढ़िया मछली का उत्पादन हो, अच्छा-से-अच्छा सौरखी, करहर और बर्री– का उत्पादन हो, इसके साथ गाय-भैंस को नहलाने-पिलाने के लिए और खेतों की सिंचाई के लिए पानी मिलता रहे। बस हो गया जरूरत की पूर्ति..। लोगों को बिना मतलब की क्या आवश्यकता है, जो धरती जैसा पानी के

ऊपर में बिछावन बिछाकर सोयेंगे भी और बैठ-बैठ कर ताश भी खेलेंगे। क्या आवश्यकता है, जो पच्चीसी का घर बनाकर पच्चीसी खेलेंगे या कि कोजागरा-दीवाली का उत्सव भी मनायेंगे। इसके लिए धरती तो है ही।

सब कुछ रहने के बावजूद भी सीतापुर गाँव को दुश्मनों का डर नहीं होता है? ऐसा भी नहीं है। कोसी-कमला के बीच स्थित गाँवों को तो इतना डर तो रहता ही है कि कहीं से उछल-कूद कर कोसी या कमला भी आ सकती है और गाँव की मिट्टी को काटकर अपना घर बनाकर गाँव के बास-डीह को तहस-नहस कर देगी, उपटा देगी, ऐसा डर तो सदैव बना ही रहता है। ठीक इसी प्रकार मौसम का भी डर बना हीं रहता है न, जो उग्र रूप छोड़कर ऐसा नम्र रूप बना ले, जिससे अकाल भी पड़ जाय, ऐसा हुआ, तब तो पेड़-पौधा के साथ मछली-कछुआ और गाय-भैंस भी प्यास से प्राण त्याग करने लगेंगे। लेकिन इसके बावजूद भी हमलोगों को इतना आत्मबल तो है हीं कि अपने ज्ञानबल के साथ अपने कर्मबल से भी हम सभी अपने-अपने जीवन की रक्षा करते हीं हैं। इसलिए दूसरे गाँव की अपेक्षा हम सभी अपने को सबल समझकर आत्मनिर्भर हैं हीं। निडर बनकर अपने गाँव के रूप-रंग को सजाये हुये हैं। सजाकर क्यों न रहेंगे। जिस पानी की गति सभी दिन से है यदि वह क्रोधित होकर रूठ भी जाता है तो एक साल तक रूठा रहेगा या दो साल या तीन साल रूठा रहेगा, यही न, मगर हम सभी तो बारह साल के रूठे हुए को बोधने का अक्ल रखते हैं। बिना अर्थ का नहीं न गाँव का नाम भी सीतापुर है.!

हजार बीधा की सीमा से बन्धित सीतापुर गाँव में जिस प्रकार ऊपर-नीचा खेत बना हुआ है, जिसको लोग ऊपरी भीठ से लेकर मध्यम नीचला और बधार (चौरी) कहते हैं, उसी प्रकार अनेक रंगों की मिट्टियाँ भी है, जो बढ़िया से बढ़िया और खराब से खराब भी हैं। अर्थात्, अधिक उर्वरा शक्तिवाली मिट्टी से लेकर कम-से-कम उर्वरा शक्ति वाली मिट्टी भी है हीं। पच्चीस से ऊपर किस्मों की मिट्टियाँ गाँव में हैं। जैसे खरियार,

मटियार, उस्सर, बलुआही, चिकनी, धुसरी, दोमट, त्रिमट, गाबीस.. इत्यादि-इत्यादि।

जैसे कि उपज-उत्पादन मिट्टी के हिसाब से होता है या जमीनके ऊपरी-नीचली आकार से भी होता हीं है, जिससे धान, गेहूँ, मरुआ, मकई, खेसारी, मौसरी, रहरी, केराउ, बदाम, तीसी, सरसों.. इत्यादि पच्चास किस्मों के अनाज उपजते हैं। इसके साथ खैहन, दलहन, तेलहन के अनेक किस्मों की फसल भी उपजती ही हैं। इतना हीं नहीं तरह-तरह के सब्जी-तरकारी– जैसे आलू, गोभी, बैंगन, टमाटर, झिमनी, भिण्डी, सजमन, कदीमा, घेरा इत्यादि भी उपजते हैं। रंग-बिरंग के मात्र अन्न-सब्जी हीं नहीं, पच्चास से ऊपर किस्मों के फल और फूलों की उपज भी होती है। आम-जामुन, लताम, लीची, सरीफा, आँता, बेल, आंवला आदि वृक्ष के समान पेड़ के संग झाड़ी जैसे पेड़ के फल भी उपजते हीं हैं। जैसे नींबू, दारीम-अनार... इत्यादि।

जिस तरह लम्बा-सीधा फल के वृक्ष हैं, उसी तरह बौना किस्म के फलवाला पौधा भी है, जैसे सरीफा, अनार, पपिता, वगैरह-वगैरह। इतना हीं नहीं, सीतापुर में अन्न-सब्जी-तरकारी के संग-संग अनेक किस्मों के साग-पात की उपज भी होती है। जैसे, गेनहारी, ठढ़िया, पटुआ, घौका इत्यादि। संग-संग लत्ती के समान तरकारी के अतिरिक्त जिस प्रकार पेड़ के समान सब्जी की उपज होती है, उसी तरह फूलों की भी। चम्पा, शिवलिंग, करबीर, अड़हुल, आदि जिस प्रकार वृक्ष सद्दश पेड़ के फूल होते हैं, उसी तरह जूही, चमेली, बेली आदि झाड़ीदार पौधे के फूल होते हैं और इसी प्रकार लत्ती सद्दश भी अनेक फूल खिलते भी हैं।

अधिक से अधिक इतना कह सकते हैं कि सीतापुर में जिस प्रकार पच्चास किस्मों के अन्न, पच्चास किस्मों के फल, पच्चास किस्मों के भी सब्जी-तरकारी के संग-संग पच्चास किस्मों के फूलों की उपज होती हीं है।

अन्न, फल, फूल, साग-पात और सब्जी-तरकारी के समान सैंकड़ों किस्मों की मछलियाँ भी तालाब-बधार (पोखैर-चौरी) और डबरा-खत्ता-कोचाढ़ि में पायी जाती हैं। जिस प्रकार तरह-तरह के अन्न, उसी प्रकार तरह-तरह की मछलियाँ भी होती हैं। उसमें भी स्वादिष्ट से स्वादिष्ट मछली जैसे रोहु, भाकुर, गैंची आदि होती हैं, उसी प्रकार मध्यम स्वाद वाली बुआरी और भुन्ना मछली भी होती हीं है। जिस प्रकार सब्जी-तरकारी या फल-फूल रंग-बिरंग के आकार के होते हैं, उसी प्रकार मछली भी अनेक रंगों की या अनेक आकारों की होती है। रोहु, बुआरी, भुन्ना और भाकुर बड़े आकार की मछलियाँ होती हैं, उसी प्रकार नैन, सौरा आदि मध्यम आकार की मछलियाँ होती हैं। इसके संग मिट्टी-पानी के बीच बास करने वाले काँकोर, डोका, घोंघा आदि भी होते हैं।

गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ा, हाथी, गदहा आदि अनेक प्रकार के जानवर भी होते हैं। वैसे तो जानवर-जानवर में गुण या उपयोग की दृष्टि से अन्तर भी होता है। लेकिन पालतू जानवर तो सीतापुर गाँव में हैं ही। अन्न-फल सब्जी के समान कुछ जानवर खाने योग्य होते हीं हैं। इसके साथ दुधारु या सवारी योग्य नहीं होते हैं, यह भी नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार एक तरफ बकरी का दूध भी होता है और दूसरी तरफ उसका माँस भी खाया जाता है। वैसे तो और जानवरों के भी माँस खाये जाते हैं, लेकिन कुछ ऐसे हैं जो केवल दुधारु के रूप में हैं, जैसे गाय, भैंस इत्यादि। इसी प्रकार कुछ ऐसे जानवर भी हैं जो केवल सवारी के रूप में उपयोग में आते हैं, जैसे घोड़ा, हाथी...। वैसे तो घोड़ा मनुष्य के सवारी के संग-संग सामान-वस्तु ढोने के काम के लिए लाया जाता है, उसी प्रकार गदहा भी हैं, जो मनुष्य के सवारी के रूप में बहुत कम उपयोग में आता है परन्तु वस्तु-सामान ढोने के लिए अधिक काम आता है। इसी प्रकार गाय के भी हैं, मादा पक्ष जिस प्रकार दूध के काम में आती है, उसी

प्रकार नर पक्ष से हल के संग गाड़ी खींचने का काम भी लिया जाता है। इसके साथ-साथ कुत्ता-बिल्ली भी है, जिसका उपयोग है भी और नहीं भी है।

जिस प्रकार अनेक प्रकार के घरेलू जानवर हैं, अर्थात् पोसने-पालने वाले जानवर, उसी प्रकार अनेक प्रकार के जंगली जानवर भी है। वैसे तो सीतापुर गाँव में हाथी, बाघ, सिंह, भालू जैसे जानवरों के रहने के योग्य जंगल तो नहीं है, परन्तु वन झाड़ नहीं हीं है, ऐसा भी कैसे कहा जा सकता है। भले ही ऐसा वन नहीं हो, जिसमें हाथी, सिंह अपना अधिकार अपने पूर्ण स्वतंत्रता के साथ सिंहभूमि के जंगल जैसा या असम के जंगल जैसा नहीं रख सकता है, लेकिन इससे क्या वैसे जंगली को पाला-पोसा नहीं जा सकता है, ऐसी भी बात नहीं है। हँ, इसको ऐसे रूप में देख सकते हैं कि जिस प्रकार हाथी जंगल में हीं रहने योग्य होते हैं, उसी प्रकार घर में रहने योग्य भी हैं। इसी प्रकार हिरण के लिए भी है। वैसे तो जिस प्रकार पालतू गाय है, उसी प्रकार जंगली गाय भी है। मगर उस गाय को नीलगाय के नाम से जाना जाता है। नील गाय की संख्या कम है, यह भी नहीं कहा जा सकता है। दूसरे गाँव में उतनी संख्या होती है या नहीं है, लेकिन सीतापुर गाँव में नील गाय की संख्या पालने योग्य गाय से अधिक हैं। अगर नहीं है तो गाँव के हजार बीघा खेतों की उपज कैसे खा जाती है? यदि उनको पकड़कर दुधारु गाय बनायी जाय तों, अकस्मात् न गाँव में दूध की बाढ़ भादो के पानी की बाढ़ जैसा दूध से भर जायगी। फिर भी कितने लोग खायेंगे, उसमें भी अब सीतापुर के लोंगों को इतने मोबाइल, टी.भी. कम्प्यूटर आदि हो गए हैं, जिससे उन्हें दूहने और ओंटने की छुट्टी है? अब तो बाजार के रेडीमेड दूध के पैकेट लाकर आसानी से अपना काम चला लेते हैं। एक तरफ आँखें मोबाइल पर रखें रहते हैं तो दूसरी तरफ अन्दाज से बर्तन में उढ़ेलकर तीन का तेरह करते हैं या तेरह का तीन करते हैं या क्या करते हैं, यह तो वे जाने, मगर ऐसे नहीं करते हैं, ऐसा भी

नहीं कहा जा सकता है। क्यों लोग दूसरे के लिए सुबह-सुबह झूठ बोलेंगे? खैर, जो है वह गाँव में है, गाँव की बात हुई। अपने गाँव पर दोषारोपण-कुठाराघात करना, दर्जनों लोगों का काम होता है। मैं वैसा नहीं हूँ, इसलिए केवल, सपने-खरीखे बात हीं कही है, देखनेवाला या करनेवाला बनकर नहीं कहा है।

सीतापुर गाँव में जैसा गृहवास है, वैसा हीं वनवास भी है। वन तो वन है, जिसका अर्थ होता है अधिक संख्याओं के समूह! जिस प्रकार वृन्दावन वृन्द लोगों का वन है जिसमें कृष्ण-कन्हैया ने लिलायें की, उसी प्रकार राम ने भी उस वन में चौदह वर्ष समय बिताये, जिसको तत्काल राम-वन कह सकते हैं वह भी, वैसा हीं है। पेड़-वृक्ष के वन भी होते हैं। जिसमें फल-फूल भी लगते हैं और सुगन्धित वृक्ष रहने के कारण सुगन्ध के उपयोग में भी आते हैं और इमारती वृक्ष से घर का साज-सज्जा भी बनाया जाता है। उसी प्रकार ऐसे वृक्षों का वन भी है, जो मीठा और अधिक मीठा फल भी देता है। पेड़-वृक्ष घरों का जैसा वन होता है, क्योंकि वह भी समूह के रूप में रहता है और उसमें रहने वाले मनुष्यों का वन तो कहा हीं जा सकता है। खैर, जो हो कि न हो मगर, फलदार वृक्षों का वन तो पर्याप्त है हीं। एक बार चतुरा बाबू अर्थात् चतुरानन मिश्र, जो भारत सरकार के पूर्व कृषि मंत्री थे, पोलैंड गये। पोलैंड में फलों के अनेक किस्म के उत्पादन होते हैं। पोलैंड के सुप्रीम के संग जब बैठे और देश के बड़प्पन्न की बात चली तो पोलैंड के सुप्रीम के विचार पर अपना विचार लाद कर चतुरानन बाबू बोले-

"मेरे देश के कनौसी के बराबर भी आपके देश में फलों के उत्पादन नहीं होते हैं।"

चतुरा बाबू की बात सुनकर पोलैंड के सुप्रीम ने अपनी नजर उठाई। उठी हुई नजर को देखकर चतुरा बाबू ने कहा- "वैसे फैसला नहीं

होगा। एक फल के एक किस्म का नाम आप बोलिए और एक का नाम मैं बोलूँगा।”

पोलैंड के सुप्रीम तैयार हो गये। गिनती शुरू हो गई। पहले वे अपने एक फल का नाम बोले। इस पर चतुरा बाबू ने कहा-

“आम।”

फिर उन्होंने दूसरा कहा।

चतुरा बाबू ने पुनः बोले-

“आम।”

इसी प्रकार से जब उन्होंने सात-आठ बार ‘आम’ कहा। लगातार आम-आम सुनकर पोलैंड के सुप्रीम ने चौंकते हुए पूछा-

“आप केवल आम हीं आम कहते हैं, दूसरा-तीसरा कहाँ कहते हैं?”

इस पर चतुरा बाबू ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया-

“मेरे यहाँ वृक्षों के रंग-रूप, फलों के रंग-रूप और स्वाद-गुण के हिसाब से आम के अनगिनत किस्म है। इसके साथ आम के जैसा अन्य-अन्य जामवन्त फलों का भी वन है।”

हजार बीघा के सीतापुर में चार आकार की भूमि है। प्रथम आकार की जो ऊँची भूमि है, जिसको उत्तम कोटि की भूमि मानी जाती है। ऊँची भूमि प्रायः बास-निवास के उपयोग में है, इसलिए उसको बासभूमि भी कहते हैं। वैसे तो कई गाँवों में बालुओं के ढेर से बना हुआ टीला-जैसा ऊँची भूमि भी है, मजबूर होकर उस जगह के लोग उसी पर घर बनाये हुए हैं, लेकिन यह घटिया मिट्टी की भूमि का बास हुआ जो सीतापुर में नहीं है। सीतापुर की अधिकांश बास-भूमि काली मिट्टी की है, जिस कारण वह ‘नागभूमि’ भी कहलाती है। द्वितीय आकार की जो भूमि है, वह आकार के हिसाब से तो वासभूमि जैसा है, लेकिन उसका उपयोग वैसे तो घर बनाने के लिए हो हीं सकता है लेकिन नहीं, उसमें लोग पेड़-पौधे

लगाने के साथ-साथ अन्न, सब्जी, तरकारी लगाते हैं। जिसको चौमास या भीठ भी कहा जाता है। तृतीय है, नीचली भूमि अर्थात् गहरी जमीन, जिसको 'धनहर' भी कहते है या 'गोरहा' भी कहते हैं। गोरहा जमीन में बरसात के समय पानी का बास हो जाता है, जिस कारण उसमें लोग सब्जी तरकारी या पेड़-वृक्ष नहीं लगाते हैं। उसमें सिर्फ पानी वर्दास्त करने वाला अन्न जैसे धान होता है।

वैसे तो, बारह महीने के साल में तीन-चार महीने तक हीं पानी का उसमें जमा रहने की सम्भावना रहती है, शेष समय वह भी सूखा ही रहता है। उसमें भी अन्य-अन्य अनाज या सब्जी-तरकारी की खेती होती है। चतुर्थ आकार की भूमि वैसी है, जिसमें बारह महीनों तक पानी जमा रहता है। वैसे तो दूसरे गाँव के समान सीतापुर में इस प्रकार की भूमि नहीं है लेकिन छः महीने तक पानी का बास करने वाली भूमि नहीं है, वह भी तो है, हीं। खैर, जो है, जैसा है, वह है ही। लेकिन आठ सौ परिवारों के घर या भोजन भी उसी हजार बीधा से प्राप्त होता आ रहा है। वैसे तो कुछ लोग बाहर से भी अन्न खरीद कर लाते हैं तथा कुछ लोग बाहर वालों के हाथ बेचा भी करते हैं। इसलिए दोनों का जोड़-घटाव होने से बराबर ही हुआ।

सीतापुर मिथिलांचल का बहुत पुराना गाँव है, कोई नव घरों वाली वस्ती नहीं। वैसे तो कोसी-कमला नदी के ऊँचे भाग में नवघरों की वस्ती है ही, लेकिन वह भी तो नवघरों का 'गाँव' तो नहीं हुआ। वैसे तो मनुष्य की पीढ़ी बदलने से समझ में वैसा आ ही सकता है। परन्तु है वह भी मिथिलांचल के प्राचीन गाँव हीं, जो कोसी-कमला नदी की कटान से कट गया और नदी के पीछे हटने से पुनः गाँव बस गया। इस कारण कोसी-कमला की कटान द्वारा गाँव का इतिहास खो जायगा, यह भी तो उचित नहीं हुआ। यद्यपि उसको 'नवघरा गाँव' नहीं कहकर 'पुनर्वास गाँव' कह

सकते हैं। लेकिन उसमें भी एक बाधा उपस्थित हो ही गयी है। वह यह है कि गाँव का नाम बदलकर दूसरा-तीसरा नाम रख दिया गया है। खासकर नवटोल के नाम से कितने नवटोल गाँव हो ही गये हैं। खैर, जो है, जहाँ है, वह है, वहीं है। मगर सीतापुर प्राचीन (बहुत पुराना) गाँव है, जिसका रूप अब भी उसी प्रकार झलक रहा है। वह भी दो दृष्टि से- घर के रंग-रूप के दृष्टि से भी और मनुष्य की दृष्टि से भी। घर के दृष्टिकोण से सीतापुर में जिस प्रकार प्राचीन गाँव के घर-द्वार घास-पात और खरही-बाँस से बनाये जाते थे, उसी प्रकार आज भी पहरेदार-रखबार के साथ गरीबों के घर हैं, हीं। आज भी वैसे हीं घर बनाये जाते हैं, जिनमें बरसात में या शीतलहरी में भी लोग निवास करते हीं है। इसका मतलब कि गाँव में पक्का मकान के दो मंजिला, तीन मंजिला भवन नहीं हैं, वे भी हैं। सभी प्रकार की सुख-सुविधा पानी-बिजली के साथ हवा के लिए पंखा, भोजन बनाने के लिए गैस चूल्हा या बिजली-चूल्हा से सम्पन्न है। लेकिन इसका मतलब कि सीतापुर में लकड़ी का जलावन या गोबर का उपला-गोइठा या वृक्ष के पत्तों से खाना नहीं बनाये जाते हैं, ये भी होते हैं। इसी प्रकार बिजली-पंखा के स्थान पर ताड़ के पत्ता का पंखा, डोम-डोमिन के द्वारा बीना हुआ- डोमरा पंखा नहीं है, वे भी हैं। इतना हीं नहीं, बिजली की ज्योति की जगह लालटेन, लैम्प, डिबिया का उपयोग भी होता है। इसी प्रकार पानी का कुआँ-तालाब भी है। यद्यपि गाँव में टंकी और चापाकल भी है, परन्तु पूरे गाँव में नहीं। खण्डित गाँव में जरूर है। जिससे कभी बिजली से तो कभी गैस चूल्हे से गाँव खण्डित होते हीं हैं। वैसे तो और भी अन्य-अन्य ऐसी चीज है जिससे गाँव के खण्डित रूप को देखा जाता है जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य आदि-आदि, मगर अभी ये सब नहीं, अभी केवल इतना हीं।

एक तरफ जिस प्रकार दो-तल्ला, तीन-तल्ला लम्बा-चौड़ा पक्का मकान है, उसी प्रकार दूसरी तरफ छोटा-छोटा एक-तल्ला मकान के साथ

भीतघर, टटघर भी हैं। समुद्र के समान हीं न गाँव भी होता है। समुद्र में जिस प्रकार बड़ी-बड़ी मछली-कछुआ होते हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े ग्राह, नकार-घड़ियाल और सौंस के साथ अन्य-अन्य जल-जानवर भी रहते हैं, जो मनुष्य को भी खा जाते हैं।

हजार बीघा जमीन वाला सीतापुर गाँव में आठ सौ परिवारों का आवास है। आठ सौ परिवारों के बीच पाँच हजार लोग हैं। अर्थात् सीतापुर की जनसंख्या पाँच हजार है। वैसे तो सभी आठ सौ परिवारों में न तो एक रंग-ढंग के लोग हैं और न हीं एक रंग-ढंग वाला खेत-खलिहान ही है। वैसे हीं अक्ल-बुद्धि के हिसाब से भी अन्तर है हीं, मगर वह अभी नहीं। अभी सिर्फ जनसंख्या और सम्पत्ति के हिसाब से जो फर्क है, केवल उतना ही।

सीतापुर में जिस प्रकार पुराने समय में संयुक्त परिवार थे। अभी भी वैसे हीं हैं, मगर ऐसा केवल पाँच हीं परिवारों में है। वैसे यह कहना कि सभी दिनों से पाँच हीं ऐसे परिवार रहें, यह भी बात नहीं है। पहले या शुरू के हिसाब से इसमें कमी भी आई और वृद्धि भी हुई, जो अभी दस-बारह परिवार पर आकर रूक गया है। वैसे इन परिवारों में भी हर तरह से एकरूपता नहीं ही है, कुछ-कुछ जिस प्रकार समानता है, उसी प्रकार विषमता भी है ही, परन्तु कुछ भी है संयुक्त परिवार तो है ही।

सीतापुर में पाँच ऐसे संयुक्त परिवार हैं, जिन परिवारों में गाँव की तीस प्रतिशत जमीन हैं। वैसे इस तीस प्रतिशत खेत-खलिहान में पाँचो परिवारों के भी एक-सा रंग नहीं ही है, कम-अधिक है ही। सभी तरह से वे पाँच परिवार, पूरे गाँव में अच्छे परिवार माने जाते हैं। जिस प्रकार घर-द्वार उसी प्रकार रहन-सहन या आवास-निवास और या उसी प्रकार पेड़-वृक्ष, बाग-बगीचा, बारी-फुलवारी के संग अन्न-सब्जी, फल-फलहारी उत्पादन के हिसाब से अधिक हीं है और अच्छा भी है। बाँस के बीट सा

वे परिवार घने हैं ही। घना कैसे न रहेंगे, आम के पेड़ के जैसा बाँस थोड़े हीं होता है, जो सदैव अकेला हीं रहना चाहता है। आम-कटहल आदि के पेड़ एक पीढ़ी जैसा होता है, इसका कारण भी है कि वे मिट्टी पर रहते हुए जैसे-जैसे नीचे से ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे डाल निकलने से सघन, होते हुए छातानुमा मेघ के समान फैल जाते हैं, जिस कारण दूसरे के फैलने में बाधा आ जाती है। इसके साथ बड़ा होने से उसके मिट्टी के नीचे में जड़ें भी ऐसे हो जाते हैं, जो दूसरे की वृद्धि को रोक देते हैं। मगर बाँस से ऐसा नहीं होता है। ये तो केला-खरही जैसा जिस प्रकार नीचे में मिट्टी पर रहते हैं, उसी प्रकार अपने ऊपर फैले हुए पत्तों को भी ऊपर उठाते जाते हैं, जिससे अगली पीढ़ी के लिए अपनी वृद्धि में बाधा नहीं होने से वे भी बढ़ते हीं हैं। दूसरा कारण यह भी है कि आम-कटहल ऐसे नपुंसक संन्यासी जैसे होते हैं, जिसे सन्तानोत्पत्ति की शक्ति रहते हुए भी उसका रूप हीं बदल जाता है। तात्त्पर्य हुआ कि आम-कटहल को सन्तानोत्पत्ति के जो रास्ता है, उसमें पहले फूल होते हैं, जिसके बीच फल और उस फल के बीच में बीज होते हैं, जिस बीज से पेड़ होता है। इसलिए अपने शरीर में अर्थात् पेड़ में सन्तान उत्पत्ति की शक्ति रहते हुए भी वे शरीर से वंश की वृद्धि नहीं कर पाते हैं। लेकिन यह अवगुण बाँस में नहीं है। वैसे केले-खरही जैसे बाँस में भी ऐसा अवगुण है ही, जिसमें फूल-फल होते हुए भी ऐसे- उत्पादन करने की शक्ति नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि जिस-प्रकार आम-कटहल के उम्र अधिक है, उसी प्रकार बाँसों के भी हैं। जिस तरह बाँस साल भर के बाद हीं बेटा-बेटी, बच्चा-बच्ची का जन्म देता है, अर्थात् कोंपर देता है, उसी प्रकार आम-कटहल भी साल भर में तो नहीं, मगर पाँच साल बीतते-बीतते, होते-होते उसमें बच्चा-बच्ची पैदा करने की शक्ति आ हीं जाती है। और न सिर्फ वो शक्ति आती है, बल्कि बच्चा पैदा भी हो जाता है। इसके बीच ऐसे अन्तर भी होता है हीं, जो कौआ-मैना की तरह बाँस अपने अण्डा को सेबते हुए बच्चों की आँखों को

फोड़कर साथ छोड़ देते हैं, मगर आम-कटहल के बीच लोग के प्रवेश होने, अर्थात् उसके बीज के रोपने की क्रिया होने से बाँस जैसा सम्बन्ध नहीं रहता है। वैसे उम्र के हिसाब से आम-कटहल जैसा हीं बाँस की उम्र देखने में नहीं आती है फिर भी जहाँ आम-कटहल में पाँच साल के बाद हीं फूल-फल होते हैं, वहाँ बाँस महान तपस्वी जैसा हो जाता है, क्योंकि बाँस में चालीस वर्षों के बाद हीं फूल-फल होते हैं। खैर, जो होता है, जिसमें होता है..। बिना मतलब का बाँस-पेड़ के हिसाब में लोग क्यों पड़ेंगे, जो उस चालीस वर्ष के बाँस के फूल-फल से आम-कटहल जैसा पेड़ होता है, कि नहीं भी होता है।

पाँचों संयुक्त परिवार में जनसंख्या या उनके गुणों में भी फर्क है हीं। जनसंख्या के हिसाब से जिस प्रकार दो परिवार सघन वन जैसे समझे-माने जाते हैं, अर्थात् पच्चास से ऊपर जनसंख्या दोनों परिवारों की है, उसी प्रकार जो शेष तीन परिवार हैं, वे भी तीन रंगों के हैं। दो परिवार ऐसे हैं, जिसको समाज में एक पुरुषिया परिवार कहा जाता है, वे पाँच पीढ़ी से एक जगह संयुक्त रूप में रहकर भी पाँच पुरुष और पाँच नारियों के बीच स्थापित हैं। वैसे बेटा की वृद्धि में कमी होने से अकेला बनता गया, परन्तु बेटी की वृद्धि तो हुई हीं। जो अपने पिता के परिवार को छोड़-छोड़कर सासुर बसती गई, जिससे संयुक्त परिवार छोटा बनते रहें।

गुण के हिसाब से उन पाँच परिवारों के बीच भी अन्तर है। दो परिवार के लोग ऐसे हैं, जो किसानी जिन्दगी से जुड़े रहे जिससे खेती-किसानी के अक्ल-वृद्धि तो जरूर हुआ, मगर वे खेत उपजाने की कला तक सीमित रह गये। शेष तीन परिवारों में से दो परिवारों का हिसाब-किताब एक रंग-सा रहने से एकरंगा हीं रहे, परन्तु एक परिवार की वृद्धि अगिया-बेताल जैसी हो गयी है। अगिया-बेताल यह कि जैसे शास्त्र-पुराण के मथने वाले भी हैं, वैसे ज्ञान-विज्ञान के भी मथने वाले चले आ रहे हैं, इसलिए गाँव के सभी परिवारों को देखने और चाल-चलन में भी

अन्तर दिखलाई देता हीं है। गाँव के लोग भी और आस-पड़ोस के लोग भी, उन पाँच परिवारों की उन्नति/तरक्की समझ रहे हैं।

सीतापुर गाँव के दो सौ परिवार ऐसे हैं, जिनके बीच गाँव के पाँच सौ बीघा जमीन है। वैसे न तो सभी परिवारों को एक रंग की जमीन है और न हीं परिवार एक जैसा है। वे दो सौ परिवार किसान परिवार के रूप में जाने जाते हैं और अपने को समझते भी हैं। कुछ परिवार को पाँच बीघा से दस बीघा के बीच जमीन है, जो- जन-मजदूर के हाथों अपनी खेती करते हैं। शेष परिवार को दस कट्ठासे पाँच बीघा के बीच खेत है, जो समय-जरूरत में जन-बोनिहार के उपयोग करते हैं और अपने हाथों से खेती-वारी के संग माल-मवेशी भी पालते हैं। शेष जो छ: सौ परिवार हैं, उनके बीच मात्र दो सौ बीघा जमीन है। कुछ परिवार को अपना बास-भूमि भी नहीं है या कुछ परिवार को बास-भूमि है भी तो जोतवाली जमीन नहीं है। वैसे-वैसे हीं कुछ को बास-भूमि के संग दस कट्ठा-पाँच कट्टा जोतवाली जमीन भी है। वैसे ये सभी लोग खेतिहर-मजदूर के रूप में जाने जाते हैं, जो गाँव के किसानों के भी खेतों में कार्य करते हैं और मौका-कुमौका पूरब भी चले जाते हैं। पूरब का मतलब हुआ नेपाल, आसाम, बंगाल, ढाका-दिनाजपुर इत्यादि-इत्यादि जगह।

सीतापुर गाँव के मजदूर लोग पूरब जो जाते हैं, वे दो मौसम में जाते हैं। डेढ़ महीना, दो महीना वहीं रहते है और वहाँ से कमाकर गाँव में परिवार चलाते हैं। अभी जो चर्चा हो रही है, वह देश की आजादी से पूर्व की, अर्थात् 1947 ईस्वी से पूर्व और 1940 ईस्वी के बाद की है। उस समय के बोनिहार-मजदूर पंजाब नहीं देखा था। जिस प्रकार रंग-रंग की जाति अन्य-अन्य गाँव में है, उसी प्रकार सीतापुर में भी है। वैसे कोई गाँव ऐसा नहीं हीं है जिस गाँव में सभी जाति के लोगों का निवास होता है और न कोई गाँव ऐसा है, जिसमें सिर्फ एक हीं जाति के लोग निवास करते

होंगे। इस कारण जाति के आधार पर एक ही जाति का एक भी गाँव नहीं है। कुछ जाति किसी गाँव में हैं या किसी गाँव में नहीं भी हैं। खैर, जो जहाँ है, परन्तु सीतापुर गाँव में पच्चीस-छब्बीस रंगों की जातियाँ हैं। जाति के हिसाब से जैसे कि सभी जानते हैं कि उच्च जाति, मध्यम जाति या निम्न जाति के रूप में जाति सब हैं। इस हिसाब से सीतापुर में सभी जाति हैं।

अन्य गाँव जैसे सीतापुर के लोग भी हैं, जो खेती-वारी के साथ अन्य-अन्य काम-धन्धा भी करते हैं। कुछ नोकरी पेशा वाले भी हैं, तो कुछ पुरहित-पूजारी भी हैं या अधिकांश जाति ऐसे हैं जो अपने जातीय पेशा को हीं करते हैं। जैसे केश काटने का काम हजाम जाति के लोग करते हैं, कपड़ा धोने का काम धोबी करते हैं, लकड़ी का काम बढ़ई, लोहा का काम लोहार, बाँस के बर्त्तन बनाने का काम डोम करते हैं और मिट्टी का बर्त्तन बनाने का काम कुम्भहार करते हैं, वगैरह-वगैरह...। जातीय वृत्ति अन्य गाँव जैसे सीतापुर के लोग भी करते आ रहे हैं।

आज से आठ सौ वर्ष पहले सीतापुर गाँव का नाम-निशान नहीं था। शुरू में, यानी कि आठ सौ वर्ष पूर्व, केवल दो लोग अपने परिवार के साथ सीतापुर गाँव आये। दोनों परिवार एक-दूसरे से अनभिज्ञ थे। गाँव की भूमि सुन्दर थी हीं। इसके साथ कटनिया धार-धुर, नदी-नाला से अलग भी थी। वैसे छोटी-छोटी दो नदियाँ भी थीं। जिनमें एक मृत-सा थी और दूसरी बहती थीं। उसी नदी के तट पर दोनों परिवारों ने रहने-बसने का प्रबन्ध किया। दोनों परिवार को एक जगह बसने से जान-पहचान भी हुई। एक परिवार के लोग कुछ विशेष होशियार थे और दूसरे परिवार के कम होशियार थे। जिन्दगी दोनों की एक समान हीं थी। दोनों परिवार अपने-अपने जीवकोपार्जन के लिए कुछ भूमि का उपयोग करने लगें। अधिक-से-अधिक उनलोगों की जीविका के साधन था साग-पात

के संग छोटे-छोटे जानवर के मांस और पेड़ का फल... इत्यादि। पानी पीने का साधन 'नदी' घर के आगे हीं बहती थी। घास-फूस का घर बनाकर दोनों परिवार रहने लगे। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे दोनों परिवारों से भी परिवार बढ़ने लगे और देखा-देखी अन्य-अन्य जगह से भी कई अन्य परिवार आ-आकर बस गये। तबतक गाँव का नामकरण सीतापुर नहीं हुआ था। जब एक दूसरे गाँव का परिचय हुआ तब आपस में सबके साथ सम्बन्ध भी बढ़ा। अधिक से अधिक जंगली जीवन से किसानी जीवन की ओर उन्मुख हुआ। गाँव में लोग आते रहे और अपना-अपना जीवन-यापन तथा रहने-बसने की ठीक-ठाक व्यवस्था करने लगे।

राज दरभंगा के द्वारा 1861 ई.के बाद राज्य के इलाके में कुछ विद्यालयों की स्थापना हुई। ऐसे विद्यालय लगभग 26 बने। इसी के साथ सीतापुर में भी एक विद्यालय बना। जिसमें कुछ परिवार के बाल-बच्चे प्रवेश लिये। प्रवेश लेनेवालों में अधिक उच्च जाति के परिवार के बाल-बच्चे थे। इसके साथ मध्यम श्रेणी की जातियों के बच्चों ने भी प्रवेश लिया, लेकिन बहुत कम संख्या में। मगर निम्न जाति के, जिसको हरिजन कहते हैं, उन लोगों के बाल-बच्चे का प्रवेश विद्यालय में नहीं हुआ। वैसे शताब्दी के अन्त होते-होते विद्यालय टूट गया। जो हुआ वह हुआ, मगर कुछ परिवार में विद्या का आगमन तो हो हीं गया। जिससे धीरे-धीरे पढ़ने-लिखने में वृद्धि हो हीं गई।

सीतापुर गाँव के आठ सौ परिवार में डेढ़ सौ परिवार उच्च जाति के हैं। उच्च जाति का मतलब हुआ– ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और भूमिहार। इन उच्च जातियों में सीतापुर गाँव में कायस्थ नहीं है, शेष तीन जातियों में राजपूत की संख्या सबसे कम और भूमिहार की संख्या राजपूत से अधिक तथा ब्राह्मण से कम है। इन तीनों में ब्राह्मण सबसे अधिक हैं।

शिक्षा का प्रचार-प्रसार, अनुपात के हिसाब से तीनों जातियों में एक समान हीं हुआ, मगर संख्या के हिसाब से ब्राह्मण में अधिक हुआ।

मध्यम श्रेणी की जो जाति हैं, उनकी संख्या, जाति के हिसाब से तथा जनसंख्या के हिसाब से अधिक है। जिस प्रकार उच्च जाति में तीन जाति हैं, उसी प्रकार मध्यम जातियाँ की संख्या लगभग बीस है और निम्न जातियाँ की, मतलब हरिजन की संख्या, जिस तरह जाति के हिसाब से मात्र चार हैं, उसी प्रकार जनसंख्या के हिसाब से भी कम हीं है। उसमें भी चार जातियाँ में मुसहर की संख्या अधिक है शेष तीन जातियाँ की संख्या कम है। उन चारो जातियों में आर्थिक दृष्टि से दो जाति– दुसाध और चमार के बीच अपना घर-द्वार के संग कुछ जोतने-कोरने के लायक जमीन भी है और पेड़-वृक्ष भी है, परन्तु दो जातियों के बीच– डोम और मुसहर के बीच अपनी जमीन नहीं है। शुरू में जब, दोनों जातियों का प्रवेश सीतापुर में हुआ था, तब गाँव का आधा से अधिक जमीन परती-परात ही थी, जिसका कोई भी मालिक नहीं था, उसमें वे लोग बस गये। वैसे धन्धा के हिसाब से डोम मुसहर से आगे बढ़ गया। क्योंकि डोम पशु-पालन को अर्थात् सुअर पालन को, अपना जातीय पेशा बनाया। इसके साथ बाँस की वस्तु-बर्तन भी बनाने लगा, जिसकी जरूरत लोगों को थी, मगर वह मुसहर को नहीं हुआ। न जातीय वृत्ति के हिसाब से कोई निश्चित कार्य मुसहर को हुआ और न हीं खेती हीं हुई। वैसे छोटा-छोटा काम-धन्धा–पशु-पालन का जरूर हुआ जो हुआ बकरी पालना। उन लोगों का सोलह आन्ना जीवन भी देहारी-मजदूरी पर आधारित रहा, जो अभी भी है।

अन्य गाँव के समान सीतापुर की जमीन का अधिकार सम्बन्धी इतिहास भी है। ब्रिटिश राज भारत में जमीन को बन्दोवस्त 1793 ईस्वी में किया। जिस प्रावधान के अनुसार राजस्व संग्राहक को जमीन का मालिक बना दिया गया। उसी तरह जमीन्दारी की प्रथा शुरू हुई। वैसे तो

इससे पहले राज दरभंगा द्वारा जमीन की मालगुजारी वसूल की जा रही थी, इसलिए उस प्रावधान का राज दरभंगा ने विरोध किया। वैसे यह दूसरी बात हुई कि मालगुजारी में एकरूपता न पहले हीं थी और न बाद में रही। उच्च जाति की वैसी जमीन की मालगुजारी कम थी, वैसी ही जमीन की मालगुजारी मध्यम श्रेणी की जाति के लिए अधिक थी। इसके साथ यह भी कि ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और मुसलमान को विवाह-दान का टैक्स नहीं लग रहा था, जो अन्य जाति को लग रहा था। विवाह-दान टैक्स का अर्थ यह हुआ– लड़का-लड़की के विवाह का कर। जिसकी बेटी का विवाह होता था उसे सवा रूपये और जिसका बेटा का विवाह होता था, उसे दस आना कर के रूप में देना पड़ता था।

अन्य गाँव जैसा सीतापुर में भी गाँव के आधार पर एक समाज बनता आ रहा है, मगर समाज के भीतर शुरू से हीं बिखण्डन का रूप भी चला आ रहा है। उस बिखण्डन का रूप है–जाति-धर्म का व्यवहार। वैसे जाति को मनुष्य जाति और धर्म को जिन्दगी की तृप्ति के हिसाब से देखें तो भेद-भाव का कोई व्यावहारिक पक्ष नहीं रहता, लेकिन वह तो है नहीं, जात-पात के बीच नीचा-ऊपर सीढ़ीनुमा खाँच बना दिया गया है, जिससे एक-दूसरे में भेद है। वह भेद सिर्फ वैचारिक क्षेत्र में हीं नहीं है व्यावहारिक क्षेत्र में भी है। उसी प्रकार धर्म का भी है। रंग-रंग के देवी-देवता का सृजन कर जातियों के बीच बँटवारा कर दिया गया है। जिसका परिणाम यह है कि एक-दूसरे में इतनी दूरी बन गई है, जिससे एक-दूसरे में जो सामाजिक सम्बन्ध होना चाहिए, वह लुप्त हो गया है। इतना हीं नहीं मनुष्य के समान हीं देवी-देवता में भी छूत-अछूत- सा व्यवहार बन गया है। फलस्वरूप जाति-धर्म का प्रभाव समाज पर इतना पड़ रहा है कि ऊपर से नीचे तक गड्ढ़ा सा बन गया है। इसका फलाफल एक-दूसरे को नीचा दिखलाने के ख्याल से अधिक समय गाँव-गाँव में झगड़ा-झंझट होता हीं रहता है।

देश स्वतंत्र होने के बाद भी या पहले भी शासन प्रक्रिया का वैसा रूप रहा जो सम्पूर्ण समाज के हिसाब से, अर्थात् पूरे गाँव के लिए न कोई योजना बनती है और न हीं कोई कार्य होता है। जिस कारण समाज के कुछ लोग सुविधा सम्पन्न है, शेष सुविधा विहीन। फलत: गाँव-गाँव के समाज में विघटन का वातावरण बनता रहा है। विघटन का वातावरण अन्य गाँव की तरह सीतापुर में भी है हीं। लेकिन कुछ है, मतलब कि सीतापुर का सामाजिक सम्बन्ध नहीं है, यह कैसे न कहा जा सकता है। कुछ मामले में एक मत-एक मुहीं सम्बन्ध है हीं। जब किसी के घर में आग लगती है, तब पूरे गाँव के लोग बुझाने के लिए जाते हीं हैं। इस जगह जातीय छुआछूत, भेद-भाव मिटाया रहता है। परन्तु शीघ्र जब गाँव में कोई सामाजिक या धार्मिक क्रिया-कलाप होता है, तब वह भेद-भाव तीव्र रूप से उठकर जगजाहिर हो जाता है। उसी प्रकार विवाह-दान या भोज-काज में भी बढ़िया से जाति-बन्धन उठा ही रहता है। मगर इससे क्या कोई अपने को सीतापुर वाला कहना छोड़ दिया है, यह भी बात तो नहीं है।

देश के अन्य हिस्से जैसा मिथिलांचल में भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आन्दोलन चलता आ रहा था। आन्दोलन-कर्त्ता में दो प्रकार के विचार बढ़िया से उजागर हुए। एक पक्ष का विचार था कि अंग्रेजी शासन को देश से भगाना। जो भिन्न-भिन्न प्रकार के शोषण भी करता है और जनताओं के बीच जोर-जुल्म भी करता है। वैसे अंग्रेजी शासक दो तरह के हथियारों का प्रयोग करता था। एक तो शासन-सूत्र वे सभी अपने हाथ में रखते थे। इसके साथ देश के भीतर जो राजा-रजवारे थे, उन लोगों को शोषण का हथकण्डा बनाये हुए थे। इन्हीं लोगों के माध्यम से अनेक तरह के शोषण किया करते थे। अनेक तरह के शोषणों में प्रमुख था, आर्थिक शोषण। इस कारण आन्दोलनकारी का दूसरा पक्ष जो था, वह अंग्रेजों के साथ देशी राजा परिवार या जमीन्दार के विरोध में भी खड़ा हुआ।

1935 ईस्वी के लखनऊ अधिवेशन, अर्थात् काँग्रेस अधिवेशन में, खुलकर दो ग्रुप में आन्दोलनकारी विभाजित हो गया। गाँधीजी जो अभी तक आन्दोलकारी को एक सूत्र में बाँधकर नेतृत्व करते हुए आ रहे थे, वे भी दो ग्रुप में बँट गये। दूसरे ग्रुप का नेता सुभाष बाबू हुए। अधिवेशन में गाँधी जी का उम्मीदवार–सीता रमैया को सुभाष बाबू ने हरा दिया। जिससे आन्दोलन कारियों के बीच जबर्दस्त भूचाल जैसा हो गया। इससे पहले अनेक क्रांतिकारीगण फाँसी पर भी चढ़ गये थे या कालापानी भी पहुँच गये थे।

किसानों का देश भारत, यहाँ के मूल उत्पादन का साधन जमीन थी। पश्चिमी देश जैसा कल-कारखाना नहीं थे। इने-गिने कुछ कारखाना थे, शेष लोग खेती पर आश्रित थे। खेती भी राजा-रजवार के संग जमीन्दार, महंथाना के बीच घिरी थी। अधिकांश लोग या तो भूमिहीन थे या कुछ-कुछ जमीन थीं। वैसे जिसको जो जमीन थी उसकी मालगुजारी जमीन्दारों के माध्यम से और राज्य के भी माध्यम से वसूल की जाती थी। मालगुजारी वसूलने का ऐसा हथकण्डा अपनाया जाता था कि समय पर यदि दो साल तक मालगुजारी नहीं दिया, तो जमीन नीलाम कर दी जाती थी, जमीन का रैयती अधिकार (मालिकाना हक) समाप्त कर दिया जाता था। अर्थात्, वह जमीन अब आपकी नहीं रहीं। वैसे समय पर मालगुजारी नहीं देने के कारण गरीबी थी, जिसका आधार भी प्राकृतिक था। बाढ़-सुखाड़-रौदी के होने से फसल नहीं उपजने से रैयत मालगुजारी नहीं दे पाते थे। इसके साथ शासन-तंत्र की भाषा भी व्यवधान उपस्थित करती थी, क्योंकि शासन की भाषा अरबी-फारसी थी। वैसे बड़े-बड़े भूपति या महंथाना को मालगुजारी नहीं लगती थी, किसी को ब्रह्मोत्तर के नाम पर, किसी को शिवोत्तर या अन्य देवी-देवता के नाम पर छूट थी। परन्तु निम्न या मध्यम श्रेणी के किसान (रैयत) प्राकृतिक आपदा से भी त्रस्त होते रहते थे।

वैसे, गाँव-समाज में भी ब्राह्मण, राजपूत और मुसलमान को जमीन की मालगुजारी नहीं लगती थी। जिससे उन लोगों की सम्पत्ति (जमीन-जयदाद) को कोई भी राजा-दैव नहीं था। इसके साथ उन लोगों के लिए और भी सम्पत्ति एकत्रित करने का रास्ता भी खुला हुआ था। तात्पर्य यह कि रैयत किसान की नीलामी की गई जमीन को वे लोग कुछ-कुछ कीमत देकर खरीद लेते थे।

सर्वे-सेटलमेन्ट या बंगाल टेनेंसी एक्ट से पहले तक जमीन के अधिकार का कोई मजबूत आधार नहीं हीं था। 1885 ईस्वी में बंगाल टेनेंसी एक्ट कानून का प्रावधान हुआ। 1896 ईस्वी से लेकर 1903 ईस्वी तक जमीन का सर्वे-सेटलमेन्ट हुआ। सर्वे-सेटलमेन्ट के ऑपरेशन के माध्यम से दरभंगा जिले में भी सर्वे-कार्य आरम्भ हुआ। जिसमें दो पक्ष थे सर्वे या सेटलमेन्ट। गाँव-गाँव में कैम्प लगा कर जमीन के बारे में पूछा जाने लगा।

स्थायी बन्दोवस्त होने से एक तरफ जमीन्दार का जन्म हुआ तो दूसरी तरफ रैयत-किसान को भी कुछ कानूनी अधिकार मिला। वह भी मिला इस रूप में कि जो रैयत बारह वर्ष से ऊपर जिस जमीन को जोत रहा है, वह उस जमीन का मालिक हुआ। लेकिन वह भी हुआ था केवल कानूनी प्रावधान के बीच ही। जिसमें कई खामियाँ भी थीं। जिस कारण जमीन रैयत के हाथ नहीं आकर जमीन्दार भूपति के हीं बीच में बनी रही। रैयत अपनी जमीन से बेदखल रह गये। यदि खेत जोतते भी थे, तो भूधारी को उपज बाँटकर देना पड़ता था।

1935 ईस्वी के बाद जन-आन्दोलन के बीच मोड़ आया। बकास्त जमीन आन्दोलन का मुद्दा बनी। वैसे वैचारिक रूप से शान्ति से भी आन्दोलन सफल हो सकता था, जो ईमानदारी से क्रियान्वित किया जाता, परन्तु वह हुआ नहीं। होता भी कैसे, अन्य क्षेत्र के लोगों की तरह

हीं न मिथिलावासी भी महाभारत पढ़ते हैं। इसलिए सूई के अग्र भाग भी नहीं दिया जाएगा, सूत्र मालूम हीं था। जो चेहरा सार्वजनिक मंचपर आन्दोलन का मुद्दा बनाते थे, वही चेहरा जमीन पर बन्दूक उठा कर गोली भी चलाते थे।

जो भोजैतनी वही चटैतनी...। इसी बीच में मिथिलांचल का समाज जबर्दस्त फंदे में फँस गये।

1939 ईस्वी के बाद अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन का रूप उग्र हुआ। रेल की पटरी उखाड़कर रेल बाधित किया गया, डाकघरों में आग लगा दी गई, टेलीफोन के तार तोड़ कर संचारतंत्र को बाधित किया गया... इत्यादि-इत्यादि। वैसे तो आन्दोलन मात्र अपने देश में हीं नहीं चल रहा था, दुनियाँ के अन्य-अन्य देशों के बीच लड़ाई फँस चुकी थी। दुनियाँ दो भागों में बँट चुकी थी। दूसरा विश्व युद्ध अपना उग्र रूप में फुटित हुआ। वैसे अपने देश में जो बड़े-बड़े भूपति थे, उनमें कुछ को छोड़कर शेष सभी भूपतियों ने अंग्रेज का साथ खुलकर दिया। गाँव-गाव में आन्दोलनकारी, देश-प्रेमी सभी के घरों की सम्पत्ति लूटी गई, गाँव-गाँव में आग लगा दी गई। दमन विराट रूप में चलने लगा...।

अंग्रेजों का संरक्षक यहाँ के भूपतिगण तो थे हीं, जो जासूसी भी किया करते थे और गोरा-पलटन के लिए खाने-पीने के संग-संग रहने की व्यवस्था भी किया करते थे। फिर भी जन-जागरण का ऐसा प्रबल रूप पकड़ लिया कि 1942 ईस्वी आते-आते आन्दोलन निर्णायक मोड़ के करीब पहुँच गया।

गाँव-गाँव में अंग्रेजों के खिलाफ जबर्दस्त आवाज उठ चुकी थी। बकास्त जमीन की लड़ाई भी शुरू हो गई। गाँव-गाँव में जमीन्दार भूपति के खिलाफ लड़ाई जोर पकड़ ली। वैसे छोटा और मध्यम किसान लोग अपना-अपना रैयती अधिकार के लिए उठकर खड़े हो गये थे, परन्तु

जातीय जाल और भूपतियों द्वारा निर्मित रंग-बिरंगी लोभ-लालच भी बीच में रहते हीं थे। फिर भी इसके बावजूद रैयत किसानों के बीच ऐसा उत्साह बन गया था कि अपने अधिकार के लिए जान देने के लिए तैयार हो गये...। वैसे एक रंग की लड़ाई सभी गाँवों में नहीं हुई। जिस जगह के भूपतियों ने अपनी चालबाजी से रैयतों के बीच फूट पैदा करते हुए अपने अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किया, उस जगह के रैयत कमजोर पड़ गये, जिससे लड़ाई सफल नहीं हुई। लेकिन इससे क्या? सभी गाँवों में ऐसा हीं हुआ, वह भी बात नहीं है। शानदार जीत रैयतों ने हासिल की।

अन्य गाँव जैसा सीतापुर में भी बकास्त की लड़ाई जोर पकड़ ली। इसमें अन्य गाँव से भिन्न रूप की लड़ाई सीतापुर में हुई। हँसेड़ा-हँसेड़ी या मार-पीट या केस-मुकदमा अन्य गाँव जैसा नहीं हुआ। शान्तिपूर्ण ढंग से जिस प्रकार कोई सरकारी आदेश लागू होता है, उसी प्रकार हुआ। रैयत किसानों को अपना अधिकार मिलने से अस्सी प्रतिशत से अधिक जमीन मध्यम और निम्न किसानों के हाथों में आ गई। शेष बीस प्रतिशत जमीन जो पाँच बड़े किसान थे, उन लोगों के हाथों में रह गई। वैसे वे लोग भी स्वयं खेती किया करते थे और छिट-फुट रूप में बटाई भी लगाये रहते थे। जो बटाई में लगाये थे, वह जमीन सर्वे में बटेदार के नाम से नामित नहीं हुई, जिससे उस जमीन को वैधानिक अधिकार नहीं मिलने से उन्हीं लोगों के हाथों में रह गई।

उसी सीतापुर में देवचरण नाम का एक रैयत भी रहता था। पाँच पीढ़ी से उसको तीन बीघा जमीन जोत में थी। वैसे चौथी पीढ़ी में अर्थात् पिता के अधिकार में जो तीन बीघा जमीन थी वह नीलाम हो गई। गाँव के हीं एक आदमी ने वह जमीन खरीद ली। लेकिन सामाजिक सम्बन्ध उन दोनों परिवार के बीच ऐसा बना हुआ था कि न तो बटाई के रूप में

आधा-आधी ऊपज बाँटते थे या न हीं सोलह आन्ना अपना समझकर खाते थे। दोनों के बीच आपसी विचार से, अर्थात् दोनों घर आवाद रहे इस हिसाब से समझौता हुआ था। जिस प्रकार एक तरफ भूपति की जमीन के कानूनी अधिकार की रक्षा को ध्यान में रखा गया, उसी प्रकार देवचरण के पूर्वज की उपार्जित सम्पत्ति से देवचरण के परिवार के भरण-पोषण का भी ध्यान रखा गया। जिससे साल में एक चौथाई से भी कम उपज देवचरण भूपति को दिया करता था।

समय बिता। 1948 ईस्वी में उस भूपति के तीन पुत्रों के बीच खेत-खलिहान और धन-सम्पत्ति का झगड़ा शुरू हुआ। वैसे झगड़ा का कारण पारिवारिक था, परन्तु गाँव के लोग समझ रहे थे कि उसका ज्येष्ठ पुत्र जो अपने पत्नी-बाल-बच्चा के रहते हुए भी एक वेश्या से विवाह कर लिया था, वह। वैसे सामाजिक विचारधारा के रूप में भी उसका विरोध हुआ ही। इसके साथ दोनों छोटे भाईयों और ज्येष्ठ भाई की पत्नियों और बेटों ने भी विरोध किया था। जिससे परिवार में भिन्न-पृथकत्व का वातावरण तैयार हुआ। वैसे बीच में जो गाँव और पड़ोस के कुछ लोग थे वे तीनों भाईयों में मेल-मिलाप करने का भरसक प्रयास किया, किन्तु वह सफल नहीं हुआ। प्रयास के क्रम में गाँव-गाँव के महंथाना और महंथ के अनेक उदाहरण देते रहे थे, लेकिन इतना पर आकर परिवार के लोगों ने गांठ दे दिया कि यदि अपनी जाति में दूसरा विवाह किया होता तो छोड़ा जा सकता था, क्योंकि जहाँ अस्सी-अस्सी वर्ष के बूढ़े लोग दूसरा-तीसरा विवाह करते हैं, वहाँ यह साठ वर्ष का विवाह कोई अर्थहीन नहीं हुआ। परन्तु अंजान जाति से विवाह किया है, इस कारण नहीं छोड़ेंगे, परिवार से अलग करा हीं देंगे। जमीन-जत्था है ही, अपना अलग में घर बनाकर रहे। वही हुआ भी।

देश आजाद होने के बाद एक साथ अनेक रंगों की हवा

वायुमण्डल में उठी, जिससे भूपति लोगों की छाती डोलने लगी। खासकर पुराने दरभंगा जिले के मधुबनी-अनुमण्डल या अभी का मधुबनी जिला का सौभाग्य रहा जो, केरल और बंगाल जैसा यहाँ पर भी जमीन की लड़ाई सघन रूप में उठ चुकी थी। जमीन के जोत-कोर पर प्रतिबन्ध– अर्थात् जमीन पर 144 दफा लगना आम बात हो गई। साथ-साथ कानून की धज्जियाँ भी उड़ाई गई, लेकिन वह हुआ दोनों ओर से, भूपति की ओर से भी और रैयत की ओर से भी। एक तरफ भूपति लोग सरकारी तंत्र के साथ मिलकर 144 धारा लगी जमीन की फसल काटने लगे तो दूसरी तरफ रैयत भी सरकारी कानून की अनदेखी करते हुए फसल काटने लगे। दोनों दोनों तरफ से फसल हथियाने लगे। इतना हीं नहीं, किसी-किसी थाना में जो फसल जमा हुई, उसे थानेदार लोग ने हथिया लिया। खैर, जो हुआ परन्तु 1940 ईस्वी के बाद मिथिलांचल के किसान-मजदूर ने भी आजादी की लड़ाई में अपनी-अपनी उपस्थिति जबर्दस्त रूप में दर्ज करायी थी। वामपंथी राजनीति एक प्रबल शक्ति के रूप में सक्रिय थी।

1940 ईस्वी के बाद खेती-कार्य में कमी आई। परन्तु उस कमी को यहाँ के किसानों ने सहर्ष स्वीकार किया। भूखे-प्यासे रहकर भी लोग आजादी की लड़ाई में अपनी उपस्थिति दर्ज करते रहे, आन्दोलन में हाथ बँटाते रहे, जेल की यात्रा करते रहे। आजतक जो सामाजिक संस्कार में जेल को नरक या पापी का स्थान समझा जाता था, उस संस्कार में तगड़ा धक्का लगा। जमात करे करामात..! गाँव-गाँव के अधिकांश मुँहजोर लोग जेल जाते-आते रहे, जिससे वह नरक से बदलकर स्वर्ग हो गया, जो पापी का स्थान था वह धर्मात्मा का स्थान हो गया।

तीनों भाई– सिंहेश्वर, गौरीनाथ और शिवशंकर के बीच जो वेश्या से विवाह का विवाद उठा, वह गाँव में हीं नहीं पास-पड़ोस के महंथाना और जमीन्दारों के भी शील को हिला दिया। एक-दो नहीं, दर्जनों महंथ

और जमीन्दार जो अभी तक धर्मात्मा बनकर धन-धर्म पूजाते थे, वे सभ्य समाज के बीच बेनकाब हो गये। वैसे महंथानाओं के बीच जमीन की लड़ाई उग्र रूप में चली। कई जमीन्दारो से बड़े-बड़े महंथाना थे ही। लड़ाई लड़ाई जैसी हुई। लाठी उठी, केस-मुकदमा हुआ, हँसेड़ा-हँसेड़ी में हत्या-खून भी हुआ।

सिंहेश्वर की करनी– वेश्या के साथ विवाह करने से– अस्सी वर्ष के पिता– राम किशोर का मन टूट गया। टूट हीं नहीं गया विक्षिप्त जैसा वह अपना होश-हवास भी खो चुका था। परन्तु गौरीनाथ भी और शिवशंकर भी अपने-अपने परिवार को स्थिर करते हुए सामाजिक सम्बन्ध में नया रूप दिया। नया रूप यह दिया कि तीन सौ बीघा जमीन नीलामी पर बन्दोवस्त जो कराये थे उन्होंने कोसी-क्षेत्र जैसा रेन्ट फिक्स करते हुए सबकी जमीन वापस करने का विचार तय कर लिया। डेढ़ सौ रूपये में देवचरण को भी अपनी जमीन वापस लेने को कहा। वैसे देवचरण अपने पूर्वज की दी गई सम्पत्ति गवा चुका था, फिर भी उसकी जोत-कोर किये बिना अपने परिवार की गाड़ी खींचते चला आ रहा था। खेत जोतने के लिए बैलों की आवश्यकता होती है। अपने लोगों के साथ यदि एक जोड़ा बैल भी हो जाय तो किसानी जिन्दगी का एक मुख्य हिस्सा हो हीं गया, इसलिए देवचरण, गाय भी पालते थे। अपना बैल बेचते रहे जिससे खरीदने का अभाव नहीं हुआ। वैसे जिस बैल से खेत जोतते थे, वह पुराना भी हो हीं चुका था, लेकिन एक जोड़ा बच्छा-बैल भी हो चुका था। उसी बच्छा-बैल को बेच कर देवचरण ने अपने पूर्वज के द्वारा दी हुई जमीन पुन: वापस ले ली।

आजादी के तूफानी दौर में, अर्थात् 1940 ईस्वी में हरिचरण का जन्म हुआ। वह, वह समय था जिसमें कई परिवार के बच्चे अन्न बिना हीं

मर गये, अनेक माताएँ अपनी शक्ति से निरोग बच्चा का जन्म नहीं दे सकीं।

हरिचरण के नाम संस्कार में जब समाज की दाई-माई एक जगह बैठ कर भाग्य-रेखा लिखने लगी तब सर्वसम्मत्ति से निर्णय लिया कि बच्चा को अधिक से अधिक जान-प्राण मिले। जिन्दा रहेगा, तो एक लोढ़ी मजदूरी करके समाज में परिवार को स्थिर करेगा।



2.

14 जनवरी 1934 ईस्वी दिन के एक बजे में दबर्दस्त भूकम्प हुआ। आजकल जैसा भूकम्प का नाप-तौल करने वाला किसी यंत्र का आविष्कार नहीं हीं हुआ था, जिससे लोग समझते कि कैसा 'भूकम्प हुआ, लेकिन इतना तो हुआ हीं कि बड़े-बड़े पेड़ भी गिर गये, मिट्टी के घर भी गिर गये और खेत-पथार में दरार फट-फट कर जमीन के भीतर से बालू ऊपर आ-आकर बधार के बधार जमीन में फैल भी गया। पानी का मोका भी फूट गये। गाँव-गाँव का शक्ल बदल गया। घरों के गिरने से लोग भी मर गये।

अन्य दूसरे गाँव जैसी क्षति सीतापुर में भी हुई। वैसे सीतापुर में एक भी घर ईंट का नहीं था, सिर्फ पाँच-सात परिवार को कच्ची ईंट का घर था, वह भी गिर पड़ा। सीतापुर में अधिकांश घर टटघर थे जो लकड़ी-बाँस के खुट्टे पर खड़े थे, वे हिल-डोल जरूर गये, लेकिन गिरे नहीं। वैसे सीतापुर में लोअर प्राइमरी स्कूल भी था, परन्तु सरकारी नहीं था। एक हीं शिक्षक स्कूल चला रहे थे। सभी विद्यार्थी शनिवार-शनिवार को उनको शनिचरा के रूप में एक पौवा चावल और एक-एक पैसा भी देते थे। किसी एक आदमी के यहाँ शिक्षक रहते थे, जो खाना-पीना भी देता था और बदले में वे शिक्षक परिवार के बच्चों को दरवाजे पर पढ़ाया करते थे। ग्रामीणों के सहयोग से पन्द्रह हाथ लम्बा मिट्टी के घर के रूप में स्कूल बना था। भूकम्प में वह भी गिर गया। स्कूल, गिरने के बाद बाहरी

कचहरी में पढ़ाई होने लगी। तीन-चार साल के बाद स्कूल का स्थान बदलकर, जहाँ स्कूल था, उस स्थान से हटाकर दूसरे स्थान, परती पर ग्रामीणों के सहयोग से फिर से मिट्टी का घर बना। स्कूल की जगह बदलने का कारण हुआ कि उस जगह को लोग अशुभ मान लिया था।

अंग्रेज के विरोध में ऐसा माहौल बन गया था कि स्कूल के जो शिक्षक थे, वे भी चोरी-छीपे लोगों को देश की आजादी के विषय में समझाते रहते थे। गाँव-गाँव में अंग्रेजी शासन का समर्थक भी था। उन्होंने चुगली कर दी, जिससे 1942 ईस्वी में शिक्षक पकड़े गये। स्कूल बन्द हो गया। वैसे एक साल के बाद जेल से शिक्षक निकल गये, परन्तु फिर से वे सीतापुर नहीं आये। स्कूल का भीतघर वैसे हीं खड़ा रहा। तीन साल के बाद दूसरे शिक्षक आये। हरिचरण का नाम भी पिता ने उस स्कूल में लिखा दिया।

देश आजाद हुआ, परन्तु अभी तक आम लोग 'स्वतंत्र' शब्द का अर्थ नहीं समझ रहे थे। सीतापुर गाँव में बड़े-बड़े जमीन वाला भी थे, लेकिन मालगुजारी वसूल करने वाले जमीन्दार मालिक नहीं थे। जिस कारण आस-पड़ोस के मालिक अपने पटवारी, गुमस्ता या बराहिल के माध्यम से कचहरी भी चलाते थे और मालगुजारी भी वसूल करते थे। कचहरी चलाने का अर्थ हुआ गाँव में जो झगड़ा होता था, उसका पंचायत करना। वैसे इसके अर्थ में जमीन्दार कमजोर थे। इसी कारण से गाँव के मुँहगर लोगों को भी बुलाते थे। कचहरी के कारोबारी का कमजोर होने का कारण था कि दो परिवार या तीन परिवारों के बीच जो झगड़ा होता था उसमें जो मार-पीट होती थी वह नया रहता था, इसलिए थोड़ा सा अनुचित होने पर पार्टी नहीं मानता रहता था अर्थात् पंचायती स्वीकार नहीं करता था। जिससे कचहरी का आदेश टूट जाता था।

देश स्वतंत्र हुआ या कि नहीं हुआ ऐसा समझने वाले लोगों का अभाव तो रहा हीं था। फिर भी तरह-तरह के भाषण गाँव में चलते हीं थे

जिससे कुछ खोये-बिसरे मुद्दा आदि भी उठ जाते थे। जमीन्दारी टूट गयी, जमीन्दार का शासन भी टूट गया। मालगुजारी अब सरकार वसूल करेगी और उस पैसे का खर्च समाज के कार्यों में लगाया जायगा.. ।

अब तक गाँव में एक भी अच्छी सड़क नहीं थी, न हीं एक पुल था और न हीं विद्यालय बना हुआ था। आम लोग की नजर में ये भी नये-नये विचार जाग उठे। पुल के नाम से दस-दस ईंटा रास्ते पर लाकर खचित-खाँच में बिछा दी जाती थी, जिस पर होकर लोग बरसात काल में चलते थे।

आम-कटहल के खुदरा पेड़-पौधा और गाछी को लेकर भी जमीन्दारों के ऐमला-फेमला के साथ लड़ाई शुरू हो गई। वैसे अभी तक जो कचहरी की स्थिति थी, वह बौद्धिक रूप में कम हो गई, परन्तु व्यावहारिक रूप में वैसी हीं थी, अर्थात् पहले जैसा। अर्थ यह कि देश स्वतंत्र होने के बाद भी गाली देना, मारना इत्यादि कचहरी के ऐमला-फेमला के साथ व्यवहार रहता हीं था। आम-बगीचा की लड़ाई पेड़ में फल लगे फलों के लिए हुई। इसलिए अन्य गाँव में इसे जो कहा जाय, परन्तु सीतापुर में 'आम-गाछी की लड़ाई' कही जाती है। वह भी केवल आम-गाछी की लड़ाई हीं कही जाती है, वह भी बात नहीं है। आम-गाछी को विवाह की सभा-गाछी और दोस्ती की धर्म-गाछी भी कहा जाता है।

आम-गाछी की लड़ाई कचहरी के पटवारी-गुमस्ता-बराहिल के साथ गुलाबचन को भी हुई। गुलाबचन को तीन भाईयों की भैयारी– तीनों भाई कार्तिक से फाल्गुन तक अपने हीं बगीचे में अखाड़ा बनाकर कुश्ती लड़ते थे। गुलाबचन के पिता गोपीचन को अपना बुद्धि-अक्ल था ही, इसलिए उसे अपना सोच-विचार भी अच्छा था। इसका कारण एक यह भी था कि दस कट्ठा खेत को गोपीचन चारो पिता-पुत्र मिलकर कुदालों से हीं उलटा लेते थे, अर्थात् ताम-कोर लेते थे। इसके साथ चार

भैंसी भी खुद पाल रखे थे, जिसका दूध-दही भी खाते हीं थे। इसी कारण जिन्दगी में मौज-मस्ती और क्या चाहिए। क्या? गोपीचन ने शास्त्र-पुराण पढ़ा था? जिससे मनुष्य के शरीर में हाथी का माथा, बिना देखा-सुनी के ही राम-सीता की जोड़ी अयोध्या नगरी के वर-वधू और कैसे धनुष के टूटने से पहले हीं प्रेम-प्रीत लगा लिया, इन सब पर विचार करते। ये सभी शास्त्र-पुराण के विचार हैं। शास्त्र-पुराण का अपना विचार शास्त्र-पुराण में ही रहें। इससे गोपीचन और गोपीचन के तीनों बेटा को क्या मतलब? मतलब है अपने मेहनत के साथ पिताजी के द्वारा दी गई सम्पत्ति को सुरक्षित रखना।

विगत वर्ष गोपीचन का देहान्त हो गया। गोपीचन जब तक जीवित था, मालिक को अपनी जमीन में अपने से रोपा हुआ आम-कटहल का फल अपने हाथों से बाँट-बाँट कर दिया करता था। सभी पुत्र इतना करते थे कि पेड़ के आधे आम और कटहल भी तोड़कर आगे में लाकर रख देते थे और भैंसी चराने चले जाते थे। जिस कारण वे मालिक के साथ बँटबारा की युक्ति नहीं समझ पाये थे।

आम-कटहल तोड़वाने के लिए कचहरी का बराहिल पहुँचा। गुलाबचन को इतना हीं मालूम था कि अपनी गाछी-कलम थी। दूसरे गाँव के लोग कचहरी में रहते हैं। इनलोगों का खाना-पीना तो ग्रामीण हीं न देते हैं। इसलिए पाँच-दस आम मैं भी दूँगा।

तीनों भाई गुलाबचन मड़ुआ रोपकर आये थे। दोपहर का समय था। बराहिल ने आकर गुलाबचन से आम तोड़ने को कहा। इस पर गुलाबचन बोला-

“अभी-अभी मड़ुआ रोपकर हम तीनों भाई आये हीं हैं, निश्चिन्त में आराम से गाछी का आम तोड़ूँगा। तत्पश्चात् पाँच आम आप के भी कचहरी में भेज दूँगा।”

अभी तक थाना-पुलिस के समान बराहिल भी अपने को समझता

था। पटवारी का नाम कहते हुए बोला- "सरकार का हुक्म है, आम आज हीं तोड़ो।"

उसी वक्त गुलाबचन का माझिल भाई बालचन वहाँ पहुँचा। तीनों भाईयों में बालचन सबसे मजबूत और ताकतबर। जैसा सुडौल जवान वैसे हीं हाथ और पैर। बराहिल के मुँह की बात 'सरकार की आज्ञा है' सुनते हीं बालचन के देह में देशी सरकार बनाने का विचार जाग उठा। जागने का कारण यह भी था कि कल शाम में सोराजीलाल के मुँह से सुना था कि देश स्वतंत्र हो गया, सबका देश हो गया। इसलिए अब किसी का कोई मालिक नहीं रहा। सबका देश हुआ; सबका शासन हुआ। बराहिल को बालचन ने कहा-

"हम अपने चीज-वस्तु का अपना ही खुद मालिक हैं कि तुम्हारी सरकार है। जाओ, एक भी आम नहीं दूँगा।"

बालचन की बात सुनकर बराहिल ठण्ढा पड़ गया, मगर जिस प्रकार कुर्सी पर बैठा हुआ कोई अफसर वा थाना की वर्दी पहनकर एक लिवर का आदमी के ढोंढ़ साँप का फुफकार होता है, उसी प्रकार बराहिल भी बन गया। इस बीच गुलाबचन अपने भाई को चुप करते हुए बोला-

"बालचन द्वार पर आया हुआ दुश्मन को भी लोग अच्छा ही वचन कहा करते हैं, तुम क्यों जान-बुझकर झगड़ा मोल लेते हो?"

न तो गुलाबचन हीं अपने विचार का भावार्थ जान सका और न हीं बालचन हीं जान पाया, लेकिन बाराहिल जान गया। क्यों न समझ पाते, जिन्दगी तो बीत रही थी शासकीय भाषा-शास्त्रीयों के बीच में हीं न...। यदि गुलाबचन को इतना भी होश रहता कि दरवाजे पर आकर बराहिल आँख दिखा रहा है और वह उसको अभ्यागत समझ रहा है। यदि ऐसी शक्ति सोचने-समझने की झमता रहती, तो जेष्ठ भाई की भाषा नहीं बोलते। वैसे तो बराहिल बालचन के गठिला हृष्ठ-पुष्ठ शरीर को देखकर

भयभीत हो चुका था, लेकिन जमीन्दारी का मंत्र जो मन को घर कर गया था, उससे फुफकार करते हीं रहें। गुलाबचन के दरवाजे से बराहिल कचहरी की ओर प्रस्थान करते हुए बोले-

"आज तुम सभी भाईयों को दिखा देता हूँ। तीनों भाईयों को हथकड़ी लगाकर जब जेल भेजवा दूँगा, तब बात समझ जाओगे।"

बराहिल चला गया। गुलाबचन भी नहाने-खाने की ओर चल दिया। कचहरी पहुँचकर बराहिल ने पटवारी को सभी बात सुना दी। गिरती सामन्ती सोच और फैलती-उठती जनवादी विचार के बीच पटवारी के मन में द्वन्द्व फैल गया। लेकिन सामाजिक सत्ता भी तो सत्ता हीं है; इसमें भी कई भत्ता भी है। समाज में भी ऐसे विचार के लोगों की सत्ता रहती हीं है, जो राजकार्य से या तो जुड़े रहते हैं या सटकर अपनी सत्ता बनाये रखते हैं। स्कूली शिक्षा पटवारी को कम हीं थी, परन्तु जमीन्दारी सूत्र का बढ़िया अनुभव था। बराहिल को राज का हथियार बनाकर लड़ाई का रास्ता तैयार किया। गाँव के जितने होशियार-समझदार लोग थे, जैसे मैनजन, देवान इत्यादि जो लोग कचहरी से जुड़े थे, सबकी बैठक पटवारी ने की। खुद बराहिल गुमस्ता के संग गाँव के असेसर को बुलाकर एक जगह बैठक की। सर्व सम्मति से कल आम तोड़ने का निर्णय हुआ। तय समय पर सभी लोग गुलाबचन के बगीचे में पहुँचकर आम तोड़ना शुरू कर दिया। गुलाबचन को टकटकी लग गई। मगर बालचन की हिम्मत में कुछ भी कमी नहीं आई। बालचन की हिम्मत देखकर गुलाबचन बोले-

"बौआ, धन-धर्म दोनों चला जायगा। आम तोड़ता है तो तोड़ने दो। छोड़ दो। भगवान को देना होगा तो अगले वर्ष इस वर्ष का भी जोड़कर आम दे देंगे।"

जिस प्रकार गर्म आग में पानी डालने से वह बुझ जाती तो जरूर है

परन्तु उसके परिताप को ठण्ढा होने में कुछ समय तो लगता हीं है। उसी प्रकार बालचन के मन में यह भी होता था कि कचहरी का झगड़ा गाँव में फैल जायगा। और वैसा होना स्वभाविक था ही, क्योंकि गाँव भी तो साथ में था। इतना हीं नहीं, वेचारा बालचन कभी भी विद्यालय का मुँह नहीं देखा था और न वैसे पुरुष की सत्संगति की थी, जिससे पौरुष का बोध होता। मगर एक विचार बालचन के मन में जरूर जाग उठा कि जब ग्रामीण लोग हँसेड़ी–लठैत के रूप में हमारी सम्पत्ति लूटने के लिए कचहरी के साथ आये हैं, तो उसके साथ हमारा सामाजिक सम्बन्ध कैसा होगा? क्या मैं उस समाज से यह नहीं पूछ सकता हूँ कि समाज जब विचार से चलता है तो हँसेड़ी– लठैत बनाने का क्या प्रयोजन हुआ? जरूर कोई-न-कोई भीतर में रहस्य है...।

संयोग बन गया। जब गुलाबचन के बगीचे में आम टूटना शुरू हुआ, तभी जेष्ठ-माह की आँधी की तरह पूरे गाँव में चक्रवाती हवा उठी। एकाएक गाँव के सभी नौनिहाल युवक भी गुलाबचन के यहाँ पहुँचने लगे। गाँव की नव पीढ़ी जो अखाड़ा पर कुश्ती खेलते थे, वे सभी बालचन को गुरु कहते थे– अखाड़े का गुरु। सोराजीलाल भी गुलाबचन के यहाँ आये। आते हीं सोराजीलाल सभी के बीच में गुलाबचन को कहा-

"गुलाबचन आपके साथ अन्याय हो रहा है, इसको रोकिए।"

सोराजीलाल के विचार का प्रभाव जितना बालचन पर पड़ा उतना गुलाबचन पर नहीं पड़ा। पड़ते भी कैसे, जिसका विचार पहले से हीं हार मान चुका था, वह कैसे शीघ्र उठकर खड़ा होता। घर से करूआ तेल से पिलाई हुई लाठी निकालकर बालचन बोला- "भैया, आप घर पर हीं रहें। घर-द्वार के साथ स्त्रीगण और बाल-बच्चों को भी देखते रहेंगे। मैं छोटे भैया के संग जाकर आम तोड़ने को रोकूँगा।"

जिस प्रकार देश के उस सीमा पर जो शक्तिशाली देश की सीमा

भी है, जाते हुए सिपाही का परिवार के लोग अन्तिम विदाई समझते हैं, ठीक उसी प्रकार गुलाबचन के मन में भाव उठने लगा। एक तरफ परिवार के सदस्य-समांग की जिन्दगी को देख रहे थे तो दूसरी ओर सम्पत्ति। रंग-बिरंग के विचार गुलाबचन के मन में उमड़ने-घुमड़ने लगे। जिन्दगी को लेकर सम्पत्ति और सम्पत्ति को लेकर जिन्दगी क्यों न? मगर अभी सोचने-विचारने का उतना समय भी नहीं है कि दूसरे से भी समझ-बूझ कर विचार कर सकूँ। इसमें भी जब लड़ाई का मोर्चा बन रहा है, तब सभी से बुझना-विचारना कहाँ तक बढ़िया होगा? लड़ाई के मोर्चा के विचार का अनुभव भी सबको एक जैसा नहीं हीं होता है। जो लड़ाई के मोर्चा पर उतरने वाला है वा जो मोर्चा पर कभी गया हीं नहीं है, दोनों के विचार में अन्तर होगा हीं न...।

सोचते-विचारते गुलाबचन अपने दोनों भाईयों को, अर्थात् ज्ञानचन को भी और बालचन को भी कहा-

“बौआ, आम, अपना परिवार का तोड़ रहा है, मगर जब समाज भी उसी के साथ हैं तब पीछे हटना भी सही नहीं है। इसलिए सर्वप्रथम दरवाजे पर आये हुए सहयोगी सब से पूछ लो कि आगे क्या किया जाय।”

गुलाबचन के विचार सुनकर जिस तरह दोनों भाई– ज्ञानचन और बालचन ठमक उठे, उसी प्रकार समाज के नवयुवक सब भी ठमक गये। लेकिन सोराजीलाल, जो दर्जन के हिसाब से कई बार, जेल-यात्रा करते हुए गुलाम देश से मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं, उनके विचार में मुक्ति का वह रूप वैसे हीं झलक रहा था, जैसा प्राप्त किया था। पहल करता हुआ सोराजीलाल बोला- “गुलाबचन, जिन्दगी की राह में कैसा भी आफत-आसमानी अथवा कैसा भी ईंट-पत्थर आकर क्यो न रोके लेकिन पीछे नहीं हटना चाहिए। क्योंकि वह निर्णायक दौर होता है। उस जगह पीछे

हटने से लोग लुढ़क जाते हैं। वैसे इसमें कुछ होशियारी की जरूरत है, लेकिन पीछे हटना किसी तरह से अच्छा नहीं है।"

सोराजीलाल के विचार में गुलाबचन को क्या मिला, यह तो गुलाबचन हीं जान सकता है, मगर बीच में हीं बालचन बोल उठा-

"सोराजी भैया, आपका विचार जब साथ रहेगा, तो सम्पत्ति बचाने के लिए हम अपनी जान देने के लिए संकल्पित रहेंगे। आप जो कहेंगे, हम उसी हिसाब से करने के लिए तैयार हैं।"

बालचन के विचार सुनकर सोराजीलाल बोले-

"बालचन, लड़ाई के मोर्चा का एक-एक क्षण वह क्षण है, जो क्षण में हीं क्षणाक कर देता है। इसलिए एक क्षण भी बिना बर्बाद किये आम तोड़ना रोकने के लिए चलो।"

सोराजीलाल के विचार सुनकर बालचन के मन में उठती चिनगारी धधकती हुई आग की भाँति एकाएक धधक उठी। अपनी लाठी सम्भाल कर बालचन बगीचे की ओर आगे-आगे दौड़ा। उसके पीछे-पीछे समाज के नवयुवक, सोराजीलाल भी और परिवार के बाल-बच्चा सहित स्त्रीगण भी गाली देती हुई बढ़ चली।

आम की बगीचा में गुमस्ता, पटवारी, बराहिल के साथ असेसर भी और समाज के पाँच मुंहगर लोग भी थे। गाँव के हँसेड़ी-लश्कर को सभी ने दौड़ते हुए आते देखा। एक-एक कर गुमस्ता, पटवारी, बराहिल और असेसर भी आम की गाछी से भाग गये। मगर गाँव के जो वे पाँच लोग थे, वे गाछी में पूर्ववत रह गये। वैसे उनलोगों के मन में मरने का डर नहीं घुसा था। डर नहीं समाने का कारण उनलोगों के मन में था कि वे समाज के लोग ही तो हैं, बीच-बचाव करते रहेंगे। मगर यह विचार मन में पहले उठा हीं नहीं था, जो अब उठ रहा था, वह तो आम तोड़ने से पहले उठ सकता था। यदि वह विचार उठा रहता है, तो ऐसी परिस्थिति हीं क्यों

बनती?

जमीन्दार के छोटे-बड़े लोग को भागते देखकर सोराजीलाल का मन अड़हुल के फूल की भाँति खिल गया। बगीचे में पहुँचकर टूटे हुए आम के ढेर को दिखाते हुए सोराजीलाल बोले-

"गुलाबचन, आपका आम है, ले जाओ।"

उसी बीच, सिंहेश्वर अर्थात् गाँव का मैनजन बोले-

"गुलाबचन, बिना मतलब का हीं लाठी-लठौवेल करना चाहते हो, समझौता मान लो।"

सिंहेश्वर का विचार सुनकर गुलाबचन सकपका गया, लेकिन सोराजीलाल ने बालचन को कहा-

"बालचन! समाज के ये हीं लुच्चा-लम्पट लोग गरीबों की सम्पत्ति और इज्जत-आबरू को सदियों से लूटते एवं लुटबाते आ रहे हैं। अभी ये समाज नहीं राज का हँसेड़ी है, इसलिए जो भाग गया, उन्होंने अपनी जान बचा ली। मगर जो पकड़े गये हैं, उन्हें छोड़ना उचित नहीं होगा।"

सोराजीलाल के विचार बालचन ने मान लिया। मगर विचार में कुछ संशोधन जरूर किया। संशोधन यह किया कि करूआ तेल पिलायी हुई लाठी है, जिस लाठी से नुकशान अधिक होगा। घातक इस कारण कि जिस प्रकार लोहे के तीर बनाते समय करूआ तेल पिलाने से वे विषाक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार बाँस की लाठी में भी होता है। जिस कारण साधारण लाठी की तुलना में उस से अधिक घातक हो सकती है। लाठी रखकर बालचन ने सिंहेश्वर के दोनों गालों पर दो तमाचे मार दिये।

सिंहेश्वर के गाल में तमाचा लगते हीं जितने नवयुवक थे, सभी शेष चारों पर भुआ की भाँति– भुआ, एक ऐसा जीव जो सहजन के पेड़ में एक समूह बनाकर लटके रहते हैं, जिसके शरीर में काँटे की तरह बाल होते हैं, लटककर सबको तेजी से चाटे मारने लगे। दोनों हाथों को ऊपर

उठाकर सोराजीलाल सबको शान्त किया। मगर एक ओर जिस प्रकार मार की चोट खाकर कुचले गेहुमन साँप की भाँति वे पाँचो फुफकार मार रहे थे, तो उसी प्रकार दूसरी ओर गनगुंआरि साँप, एक ऐसा साँप, जिसे दोनों तरफ मुँह होते हैं और दोनों ओर चल सकते हैं। समाज के भी सिपाही लोग सीटी बजा हीं रहे थे। लड़ाई जीतने के बाद लड़ाई लड़नेवाले का विचार सर्वोपरि हो हीं जाता है। सर्व-सम्मति से यह निर्णय हुआ कि ये पाँचों व्यक्ति सौ-सौ बार कान पकड़कर समाज के बीच उठेंगे-बैठेंगे तो जान छोड़ देंगे।

आगे-पीछे पाँचों को करते देख सोराजीलाल पुन: विचार में सुधार करते हुए बोले- "कान पकड़कर उठने-बैठने को छोड़कर इन पाँचों से थूक चटबाओ।"



3.

1945 ई. आते-आते गाँव-गाँव के सरकारी शिक्षक जेल चले गये थे, जिस कारण स्कूल बन्द हो गये थे, वे शिक्षक लोग भी जेल से बाहर निकले और स्कूल भी खुल गये। वैसे न तो सभी गाँव में स्कूल ही थे और न हीं सभी स्कूल के शिक्षक जेल गये थे। हाँ, यह बात जरूर थी कि अधिकांश स्कूल के शिक्षक जेल गये थे, बचे हुए शिक्षक डरकर घर चले गये थे। घर में हीं रहने का कारण केवल अंग्रेजी शासन द्वारा चलाया जाने वाला दमन चक्र नहीं था। इसमें भी दो तरह के विचार थे। प्रथम यह कि अंग्रेजी शासन के समर्थक थे। इसलिए जनजागरण से डर गये थे और दूसरा, वैसे विचार के लोग थे जो प्राचीन पद्धति के विचार से प्रभावित थे। वे लोग पुराने विचार से इतना प्रभावित थे, जो स्वयं को केवल एक निष्पक्ष गुरुतुल्य मानते थे, जिससे देश की आजादी के आन्दोलन से वे सभी स्वयं को सोलह आन्ना दूर रखे रहें। मगर विषम परिस्थिति देखकर अपनी जिन्दगी के विचार को समेटकर अपने आप को सुरक्षित रखने के लिए स्कूल को छोड़-छाड़ कर घर पकड़ लिये थे।

स्कूल खुलते हीं अन्य दूसरे-तीसरे शिक्षक ने आकर शिक्षण-कार्य को संचालित किया। सीतापुर के स्कूल में भी पढ़ाई-लिखाई शुरू हुई। पहले के विद्यालयों का कागजात जब्त हो चुके थे, क्योंकि पहले के जो शिक्षक थे, उनपर शासन-विद्रोह का अभियोग लग चुका था, जिससे एक

साल से अधिक वे जेल में रहें। विद्यालय खुलने के बाद पुन: छात्रों का नामांकन हुआ। देवचरण ने भी अपने पोते हरिचरण का नाम भी लिखवा दिया। वैसे बच्चों को किस उम्र में विद्यालय भेजा जाय, प्राचीन पद्धति क्या कहती है? मगर इन सब पर कोई विचार नहीं किया गया। बिना कोई प्रमाण-पत्र के ही, बिना कोई जन्म-कुण्डली के हीं छात्रों का नामांकन हुआ। पाँच वर्ष के बच्चे से लेकर पन्द्रह-बीस वर्ष के बच्चे, जिसे बौद्धिक रूप से अक्षर बोध नहीं था, सबका प्रवेश विद्यालय में हो गया।

पढ़ा-लिखा विचारवान शिक्षक होने के नाते उनलोगों का मन इतना तो मान हीं रहा था कि समाज के प्रबुद्ध अंग होने के कारण देश की सेवा उन सबका भी कर्त्तव्य है। इसलिए बिना कोई भेद-भाव कर अधिकांश शिक्षक विद्यालय में पढ़ाते रहे थे। वैसे समाज के बीच विद्योपार्जन के लिए सामाजिक रोक-टोक नहीं था, इसे भी नकारा नहीं जा सकता है। कुछ शास्त्रीय ज्ञान ऐसा भी था जिसे महिला और बच्चे से परहेज माना जाता था। वैसे भागवत-कथा गाँव-गाँव में होती थी। जिस आसन पर बैठकर व्यास जी ध्रुव-प्रहलाद की कथा सुनाते रहते थे, उसी आसन पर ऋषियों-मुनियों की कथा भी कहा करते थे। मगर समाज के बीच जो चल रहा था यानी समाज की जो गति-विधि थी, उसमें उबड़-खाबड़ नहीं था, इसे भी नकारा नहीं जा सकता। शिक्षकों के बीच भी जाति-स्वभाव का प्रभाव था, जिससे शिक्षक-शिक्षक के बीच भी कुछ-न-कुछ दूरी बनी हुई थी।

1945 ई. बीतते-बीतते 1942 ई. का जो तूफानी आन्दोलन था उसमें कुछ नरमी आई। बहादुर अंग्रेजों ने भी यह महसूस कर ही लिया था कि अब शासन-सत्ता बचाना कठिन है। इस कारण सत्ता का हस्तांतरण करना ही मात्र विकल्प है। जेल से आन्दोलनकारी सब को निकाले जाने लगा। गाँव-गाँव में गोरा-पलटन की जो घोड़-दौड़ चल रही

थी, उन सबको भी समेट कर केन्द्रित होने लगा। अपने देश की सत्ता अपने ही हाथ में आयेगी, जिसे अपने हीं ढंग से चलायी जायगी। अभी तक जो देश के शासन का इतिहास रहा, वह सिर्फ अंग्रेजी शासन तक नहीं रहा। इससे पहले भी विदेशी शासन रहा था। मगर वह अभी नहीं, अभी इतना हीं कि मुगल शासन के बाद अंग्रेजी शासन आया।

जिस प्रकार जेठ-अषाढ़ माह में तेज धूप से जली हुई जमीन की जो धरती से जुड़ी हुई घास-पात के साथ छोटी-छोटी पेड़-लत्ती थीं, वे सभी भी जलकर सूख चुके थे, लेकिन बादलों की बर्षा से धरती ऐसी सींची गई कि जली हुई, मरी हुई, मुरझाई हुई तथा असक्त सभी प्रकार के पेड़-लत्ती उठकर खड़ी हो गयी।

देश की आजादी से पहले देश की जो-जो समास्या थी, वे 1945 ई. के बाद जब देश के जन-गण के बीच विश्वास जगा कि अब अंग्रेजी शासन टूट जायगा और अपना शासन होगा ही, विश्वास जगते हीं सबकी नजर अपनी-अपनी जिन्दगी की बाधा-रूकावट पर पड़ गई। पहले निज समस्या का समाधान हीं आवश्यक, लोगों में इस तरह के विचार जागते ही हजार समस्याओं का उदय गाँव-गाँव में होने लगे।

किसानों का देश भारत, किसानों का बेटा देश को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराकर अपना कल्याणकारी रास्ता पकड़कर आगे-आगे चलेगा, इसलिए किसानी काम के लिए मिट्टी-पानी, बीज-बैल के साथ खेती करने का अक्ल भी चाहिए तभी खेती अपनी गति से संचालित होगी।

दिनानुदिन नया अक्ल और साधन होने से उपार्जन बढ़ते ही जायेंगे। जिससे देश शक्तिशाली बनेगा। जब देश शक्तिशाली होगा तभी देश के लोग शक्तिवान होंगे। सबके मन में यही आशा और विश्वास भी थे।

बकास्त जमीन का आन्दोलन उठ चुका था। मगर उसमें एकरूपता

का अभाव रहा था। गाँव-गाँव के समाज वैचारिक रूप से भी और व्यावहारिक रूप से भी अलग-थलग रहे। खेत के मर्म को जाननेवाले जो किसान हैं, वे इंच-इंच भर की जमीन की उपजाऊ शक्ति को बढ़िया से जानते हैं। इसलिए वैसे किसान नहीं हैं, यह भी नहीं हीं कहा जा सकता है जो अपने खेत को प्राकृतिक शौचालय बना कर रौब से बोलता है- "यदि मैं प्राकृतिक शौचालय नहीं दूँगा तो लोगों का मल-मूत्र त्याग बन्द हो जायगा।"

आजादी की अन्तिम दौर आते-आते देश की समस्या दर्जन से अधिक राजनीति दलों ने भी बनाई। समस्याओं को किस ढंग से समाधान किया जाय, अधिकांश वेद-वक्ता लोग विचार करते ही रहते थे। जिससे पोखर के जाठ (जाइठ) के पास की मिट्टी लेकर उस पोखर के पानी की गहराई जान सके। यह भी तो विचार के क्षेत्र में है हीं। बकास्त आन्दोलन किसी-किसी गाँव में शत-प्रतिशत सफल हुआ, परन्तु अन्य किसी गाँव में खिचड़ी नहीं हुआ, यह भी नहीं कहा जा सकता है। हुआ, दोनों। खैर, जो हुआ कुछ लोगों ने अपने-अपने हाथ से अपने-अपने भाग्य भी लिख लिया और कुछ लोग या तो लिखा हीं नहीं या लिखकर मिटा लिया। गाँव-गाँव से, जमीनवाला किसान का बेटा गाँव को छोड़कर शहर-बाजार की ओर भागा हीं जा रहा है। अधिकांश लोग चाहे वे बुद्धिजीवी परिवार से आते हो, चाहे शिक्षित परिवार से, चाहे वे किसान परिवार के हों, चाहे औद्योगिक परिवार के हों, चाहे खेतिहर-मजदूर परिवार के हो, गाम-घर से भागकर क्यों बाजारोन्मुख हुये हैं?

लाखों-करोड़ों जीव-जन्तुओं के बीच मनुष्य सबसे ऊपर विवेकशील जीव माना जाता है, माना हीं नहीं जाता है वास्तव में वैसा है भी। कहने के प्रक्रम में जिस प्रकार मंच पर कोई वक्ता बोलता है कि बैल बहने के लिए और विवेकवान कहने के लिए जन्म लिये हैं, तब जो ऐसा नहीं होता है, तो वह भी जुल्म की ही बात है। खैर, जो हुआ, जिस

प्रकार किसी वक्ता का विचार ऊपर है, उसी प्रकार दूसरा वक्ता भी तो ऐसे ही है, जिसका कहना है- "जहाँ रहो वहाँ सुन्दर देशा। जो प्रतिपालक सो हीं नरेशा।"

विचारणीय प्रश्न तो तुलसी बाबा का भी है हीं, चाहे वे क्रोधित होकर कहा हो या भाव से भावुक होकर प्रेमाभाव से कहा हो।

साढ़े तीन हाथ के मनुष्य को दुनिया की ओर देखने से पहले अपने शक्ल-सूरत को अन्य-अन्य जीव-जन्तु के शक्ल-सूरत से तुलना कर लेना चाहिए, कहने के लिए तो कह हीं सकते हैं कि हाथी हो या बाघ, भले ही जंगल में अपनी शक्ति से हीं राजा क्यों न बना हो, मगर रहने का घर बनाने का अक्ल न तो हाथी को है और न ही बाघ को है, लेकिन मिट्टी के भीतर रहने वाला चूहा अथवा खिखिर-सियार उसी जैसा है, यह भी कैसे कहा जा सकता है।

बाजार की ओर गाँव-घर के लोगों को पलायन करने की जरूरत क्यों पड़ी? चाहे वे कोसी के तट के लोग हों या कमला-बागमती के किनारे पर रहनेवाले लोग हों, क्या वे लोग यह नहीं जानते हैं कि दुनिया के समृद्धिशाली शहर नदी के किनारे ही बसा हुआ है। दुनिया की बात तो छोड़ दीजिए, अपने बिहार के जो प्रमुख शहर हैं, वह कहाँ हैं?

सभी लोग यही न चाहते हैं कि अधिक-से-अधिक शान्तिपूर्वक जीवन अपना भी बितावें, परिवार भी व्यतीत करें और समाज को शान्ति मिले। मगर इसके लिए क्या अभाव है और कितने कौन-कौन रास्ता क्यों बाधित है, इस पर विचार कौन करेगा? विचारणीय प्रश्न है जीवन कैसा चाहिए? जब धरती पर जन्म लिया तभी भूख लगेगी ही, यदि भूख को नहीं मिटाओगे तो शरीर एक दिन गल-मिट जायगा। वैसे अन्न-खाद्य से भी अधिक जरूरत पानी की है और इससे भी अधिक जरूरत हवा की है जिससे साँस लेते हैं। मगर वह तो प्रकृति अपने जुगाड़ से समस्त दुनिया

को भर दिया है। वैसे तो पीने का पानी भी है और भोजन-सामग्री उत्पन्न करनेवाली मिट्टी भी, मगर उसमें मेहनत की कुछ आवश्यकता पड़ ही जाती है। धरती से अन्न-अनाज पैदा होता है और निचले पाताल या ऊपर आकाश से पानी टपकते हैं। इसमें मनुष्य का अपना इतना तर्जुबा बढ़ ही जाता है जिसके लिए कुआँ, चापाकल... इत्यादि की व्यवस्था करनी ही पड़ती है। वैसे आकाश का पानी जिस प्रकार अधिक पवित्र होता है, उसी प्रकार उसका तजुर्बा भी कठिन होता है, लेकिन असम्भव होता है, यह भी कहना उचित नहीं होता है। जब कि तीनों साधन पर्याप्त हैं तो अन्न का अभाव क्यों होता है? पानी दूषित कैसे हो जाता है?

विवेकशील मनुष्य रहते हुए भी जिन्दगी की मूल-भूत ढाँचा से अदृश्य हो चुके हैं। वैसे अदृश्य होने में सोलह आन्ना अपना ही दोष है, यह भी नहीं कहा जा सकता है। सर्वविदित है कि किसी बच्चा का जन्म अज्ञान अवस्था में होता है जिसे जीने वाले जीवन की सभी शक्तियों को रहते भी वैसे शारीरिक अवस्था होती है जो कछुआ-बच्चा के समान नहीं कि पानी के ऊपर दौड़ता हुआ जाय और अण्डा गिराता हुआ जाय। उस अण्डा की शक्ति ऐसी है कि माता-पिता की खोज नहीं करता, आवश्यकता भी नहीं होती है। तुरन्त स्वयं फूटकर बच्चा हो जाता है। बच्चा बनते ही दौड़ने की शक्ति उसमें आ जाती है। दौड़ने की शक्ति आते हीं अपने जीवन का भार उठा लेता है। मगर कछुआ का बच्चा कितना भी तेज क्यों न होता है, लेकिन अपने माता-पिता को भी कहाँ पहचान पाता है? मनुष्य ऐसा नहीं है। इसको 'माता-पिता-परिवार से लेकर समाज तक का सहारा है, हीं। मनुष्य के जीवन के लिए भोजन मूल चीज है। भोजन के बाद सभ्य समाज में जन्म लेने के नाते युगानुकूल वस्त्र की आवश्यकता, दूसरी आवश्यकता हुई। जंगली मानव अब तो मनुष्य ही नहीं रहा, आज का मनुष्य तो बहुत ऊपर उठ चुका है। जिस अनुपात में जीवन है, उसी अनुपात का आवास भी चाहिए, वैसे हीं

पढ़ाई-लिखाई, रोग-बीमारी के ईलाज के साथ-साथ साहित्य-कला... इत्यादि भी चाहिए ही। यही है मनुष्य की जिन्दगी का ढाँचा।

अभी तक जो अन्धकार मानव-समाज के बीच व्याप्त है, वह प्राकृतिक भी है और कृत्रिम भी है। समाज में जो रूढ़िवादी विचार और अन्ध-विश्वास फैला है, वह कृत्रिमगत अन्धकार का भारी स्रोत है। रंग-रंग के अन्ध-विश्वास फैले हुए हैं और नये-नये सिरे से फैलते भी जा रहे हैं। अभी अधिक नहीं, अभी इतना हीं कि मिथिलांचल के मध्य जो दरभंगा-लहेरियासराय में स्वास्थ्य के लिए अस्पताल बना और उसमें आधुनिक ढंग के ईलाज की जो व्यवस्था की गई, क्या उसका विरोध नहीं हुआ? खूब विरोध हुआ। गाँव-घर के जितने ठगने-झूठ बोलने वाले थे, सभी ने अपने-अपने ढंग से विरोध किया। इसका मतलब कि आज का मनुष्य उसको खराब समझेगा। जीवन की एक मूल-भूत आवश्यकता की पूर्ति हो हीं रही है।

दुनिया के बीच आज के परिवेश की जिन्दगी कैसी बनती है? यह तो विचारणीय प्रश्न है ही। अभी जिसको शहर-बाजार समझते हैं, उसमें जिन्दगी के सभी मौलिक आवश्यकताओं के साधन निर्मित हो चुके हैं, जिससे जिन्दगी आसान बन गई है। मगर सीतापुर जैसा- गाँव जो मिथिलांचल में हजारो हैं, उनमें कुछ नहीं है। गाँव की जिन्दगी भारी बन गई हैं। इसलिए अपनी मातृभूमि को त्याग कर, अपनी मानसिक-शारीरिक शक्ति को जगाकर अपने-अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए एक-एक कर सभी लोग दुनिया के कोने-कोने में जाकर बस रहे हैं।

वैचारिक रूप में अभी भी हमलोग मिथिला के उस रूप को देख ही रहे हैं, जो पुरानी चिन्तनधारा के अनुकूल है। इसलिए हम सभी आज के मिथिला का चित्रांकन यदि नहीं करेंगे तो सिर्फ जादू-टोना या छू-मन्तर कह देने से काम हो जाएगा, यह सम्भव नहीं है। हजार-लाख वर्ष पहले

के सतयुग-त्रेता युग से निकलकर आज हम सभी लोग इक्कीसवीं शताब्दी में पहुँच चुके हैं।

बकास्त आन्दोलन सीतापुर में शत-प्रतिशत सफल हुआ। शत-प्रतिशत सफल होने के पीछे दो कारण हुये। न तो अन्य गाँव जैसा सतरह तरह के राजनीति दल थे और न हीं आजादी के आन्दोलन में सतरह प्रकार के विचार। काँग्रेस और वामपंथी अर्थात् पूजीवादी और समाजवादी–सिर्फ दो हीं विचारधारा गाँव में थी। ज्योंहि काँग्रेस महाधिवेशन से बकास्त जमीन का प्रस्ताव पास हुआ, त्योंही सीतापुर के दोनों दल मिलकर आन्दोलन के रूप में आन्दोलित हुये। जिससे सफल हुये। वैसे काँग्रेसी कार्यकर्त्ता जो थे, वे स्वामी सहजानन्द जी के विचार से प्रभावित थे और अपने आप को स्वामी जी का भक्त भी समझते थे।

सीतापुर गाँव का समाज भी देश के कल्याण की दिशा में एक कदम आगे बढ़ना अपना कर्त्तव्य समझा। इस कारण अन्य गाँव जैसा न तो सवाई पर सूद लगानेवाला महाजन उठकर खड़ा हुआ और न हीं भरना-बन्धकी लगाने वाला भरनदार और बन्धकीदार। इसलिए शान्तिपूर्ण ढंग से बकास्त आन्दोलन सीतापुर में सफल हुआ। मगर बगल के गाँव, रूक्मिणीपुर में गदकिच्चन वा तवाही मच गया।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में गाँधी जी बिहार आ चुके थे। जमीन के सिस्टम या जमीन्दारी शोषण सुनने के बाद आये हुये थे। इससे पहले 1885 इस्वी में क्राँग्रेस पार्टी विदेशी ह्यूम द्वारा बन चुकी थी। जिसके भीतर गाँधी जी ने अपना कार्य संचालन किया। 1925 ई. में वामपंथी पार्टी भी देश में बन चुकी थी। 1927 ई.में सोसलिस्ट पार्टी भी बन गई।

रूक्मिणीपुर गाँव का सौभाग्य माने या दुर्भाग्य, वामपंथी पार्टी नहीं बनी। वामपंथी के स्थान पर समाजवादी और दक्षिणपंथी के स्थानपर

क्राँग्रेसी बने। दोनों का आधार बदलकर जातीय आधार बन गया। सभी प्रकार के, अर्थात् औकात–सम्पत्ति का हिसाब–लोग दोंनो पार्टियों में बँट गये। वैसे रूक्मिणीपुर की आम जनता भी अंग्रेजी हुकुमत के विरोध में खड़ी हुई, मगर नेतृत्व रहा सम्पत्तिशाली लोगों के हाथों में।

बकास्त आन्दोलन छिड़ने के साथ रूक्मिणीपुर में जातीय उन्माद उठकर खड़ा हुआ। जिससे जातीय सत्ता ने जोर पकड़ा। देश स्वतंत्र नहीं हुआ था फिर भी जातीय उन्माद के कितने रंग के विवाद गाँव में खड़े हो ही चुके थे। मालगुजारी के वसूल के लिए वैशारव-जेष्ठ महीने की तेज धूप में ईंट पर खड़ा करना जैसे कितने घटनाएँ घट चुकी थीं। छोटी-छोटी गलती में पानी से नहलाकर घोरन की छत्ता देहपर झाड़ चुके थे। गोला-पत्थर-लाठी से डराकर पूरे-पूरे दिन तेज धूप में सजाएँ दी जा चुकी थी, वही गाँव है रूक्मिणीपुर।

बकास्त जमीन आन्दोलन की हवा उठते हीं रूक्मिणीपुर के सूदखोर महाजन उठ-उठ कर खड़े हुये। जिस प्रकार क्राँग्रेस जातीय आधार पर अन्दर-अन्दर से विभाजित था, उसी प्रकार सोसलिस्ट दल भी वैसा हो ही चुका था। नरम दल-गरम दल कर-कर के काँग्रेस और सोसलिस्ट, प्रजा सोसलिस्ट, संयुक्त सोसलिस्ट– वगैरह-वगैरह कितने विभाजन दोनों दलों के बीच हो चुके थे।

बकास्त जमीन के आन्दोलन से आगे बढ़ गयी सूदखोरी-महाजनी। वैसे दोनों दलों के बीच ऐसा हुआ भी जिससे वे एक-दूसरे को देख-देखकर, अर्थात् जातीय आधार पर बाकस्त जमीन का आन्दोलन छिट-फुट रूप में अवश्य उठा। मगर जो सामूहिक नहीं, राजनैतिक दलों के अनुकूल उठकर खड़ा हुआ। जो एक मात्र विचारधारा के अनुकूल रहा बल्कि आन्दोलन के अनुकूल नहीं। गाँव भी तो गाँव है। एक जाति का तो है नहीं, जो सभी मुद्दों पर एक मत होकर चल सके। इसमें भी रूक्मिणीपुर तो और भी अजीव है। इस गाँव में देवी-देवता, स्थान-

धर्मशाला सभी कुछ बँटे हुये हैं।

रूक्मिणीपुर में आठ कट्ठा जमीन दखल करने का प्रश्न उठा। गाँव की यह पहली घटना थी। हुआ यह कि जमीन दखल करने के प्रश्न पर एक जाति का शूमा-वर्चस्व बना। कल ही जमीन पर हल चढ़ाया जायगा। रात भर में हीं रंग-विरंग की योजना गाँव में बनने लगी। आठ बजे प्रात:काल में हल चढ़ाने का जो समय निर्धारित था, उससे पहले ही अर्थात् छ: बजे हीं दो जातियों के बीच ऐसे मार फँस गई, जिससे कि दोनों तरफ से लाशे ही नहीं गिरी, एक तरफ से एक और दूसरे तरफ से दो मर भी गये। अंगरेजों की लड़ाई में तो रूक्मिणीपुर के एक भी व्यक्ति ने जेल नहीं देखा था, मगर दोनों जातियों के लोग एक साल तक जेल में ही रहें। यह भी हिसाब तो आजादी के आन्दोलन का ही हिस्सा न हुआ, या नहीं?



4.

सीतापुर गाँव से लेकर मिथिलांचल होते हुए सम्पूर्ण देश भी स्वतंत्र हुआ। देश के जन-जन में स्वतंत्रता की जो खुशी मिलती है, उस खुशी की लहर लहराई हीं। वैसे शासक के रूप में अंग्रेजों ने सत्ता छोड़ दी, मगर देश की जो अपनी समस्या हजारों वर्षों से जन्म लेती हुई चली आ रही थी, वह तो और जटिल हो गई थी। जिस कारण आगे बढ़ने के बदले देश की अधोगति हो रही थी। इसके साथ अंग्रेज बहादुर हिन्दू-मुसलमान के बीच भारत-पाकिस्तान बना के लम्बी लड़ाई का बीज बो दिये थे। वैसे यदि अवलोकन किया जाय तो भारत की पश्चिमी सीमा पर पश्चिमी पाकिस्तान हुआ और पूरब से बंगाल कटकर पूर्वी पाकिस्तान हुआ, जो समुद्र से सटा हुआ भी है। ये भूभाग पाकिस्तान देश के रूप में हुआ। मगर यहाँ के समाज, तात्त्पर्य मिथिलांचल के साथ सीतापुर के समाज सदियों से हिन्दू-मुसलमान एक ही गाँव में मन्दिर और मस्जिद भी बनाकर अपनी-अपनी पूजा-इवादत करते आ रहे हैं। धर्म के नाम पर भी जब देश का विभाजन हुआ और नवीन देश के रूप में भी स्वतंत्र होकर खड़ा हुआ, तब जातीय उन्माद नहीं जागे, यह भी तो असम्भव नहीं है, सम्भव है। एक-दूसरे को अपना नहीं, दूसरा समझते रहने से विवाद की जड़ मोटी हीं बनती जा रही थी। जिससे दोनों के बीच जहाँ-तहाँ मार-पीट, खून-खराबी से लेकर सम्पत्ति के साथ इज्जत-आबरू की लूट-पाट

भी की गई और अभी तक होती आ ही रही है।

देश की आजादी के लिए जो देशभक्त थे, उनलोगों के सामने देश को स्वतंत्र होने पर पूर्व में जितनी समस्या थी, उससे कई गुणा अधिक समस्या स्वतंत्रता– प्राप्ति के बाद सामने में आ गई। छिन्न-भिन्न शोषित-पीड़ित देश का बागडोर देशवासी के हाथ में आया। जिससे सबके विचार में द्वन्द्व उत्पन्न हुआ। वैसे आजादी से पहले वैचारिक चिन्तनधारा का स्वरूप वैसा नहीं था, जिससे समस्या का समाधान होता। एक तरफा कहें या एकसूत्री, सभी आन्दोलनों का उद्देश्य अंग्रेजी शासन के विरूद्ध था। इस कारण दूसरी-तीसरी समस्या गौण पड़ गई थी, जो स्वतंत्र होने के बाद प्रमुखता से आगे आई। आज का देश जो भारत है, वही आजादी के समय 1947 ई.में भी था, 'किसानों का देश भारत' तब भी कहलाता था और अब भी कहलाता है। भले ही लोग अपनी जमीन-जत्था, गाँव-घर छोड़कर शहर-बाजार क्यों नहीं पकड़ रहे हों, खैर, जो है, मगर इतना तो हमलोगों की समझ में आयेगा ही कि आज के जैसे 1947 ई. में देश की जनसंख्या नहीं थी, फिर भी खान-पान का अभाव नहीं होता था, यह भी कैसे नहीं कहा जा सकता है। अन्य-अन्य देश से अन्न-अनाज कर्ज के रूप में आता था और हमलोग जनेर-गेहूँ खा-खा कर प्राण बचाते थे।

किसानों की दशा-दिशा दिखलाने में भी और सुधारने में भी स्वामी सहजानन्द जी की जबर्दस्त भूमिका थी। किसानों की समस्या को वे अतिसूक्ष्म दृष्टि से देखते थे। सीतापुर गाँव के जो काँग्रेसी कार्यकर्त्ता थे, वे सभी स्वामी जी के भक्त थे, जिससे अन्य गाँव की अपेक्षा सीतापुर में बकास्त जमीन की वापसी सफल रूप में संचालित हुई। वैसे गाँव में वामपंथी विचारधारा भी प्रबल रूप में थी। जिसका प्रमाण अभी भी प्रत्यक्ष रूप में सबके सामने में है, जो मिथिलांचल के ही अन्य-अन्य गाँव में अभी भी वास भूमि की समस्या है, मगर सीतापुर में नहीं है। वैसे

किसान की जो निम्न-कोटि होती है, अर्थात् सीमान्त किसान की संख्या सीतापुर में अधिक है। किसान परिवार की जो नव पीढ़ी के लोग हैं, वे अपने-अपने खेत-खलिहान और घर-द्वार छोड़कर शहर-बाजार में घर-द्वार बनाने लगे हैं। लेकिन गाँव भी तो गाँव है, जिस प्रकार एक ओर जमीन छोड़ने वाले हैं, उसी प्रकार खेती करने वालों का अभाव भी हो गया है। सैकड़ों ढंग की उलझने जमीनों के बीच उत्पन्न है।

एक तरफ आजादी के कुछ ही दिनों के बाद गाँधी जी की हत्या हुई, दूसरी तरफ देश की शासन-व्यवस्था को चलाने के लिए संविधान भी बनकर कार्यरत हुआ। खेती के लिए जिस प्रकार मिट्टी की जरूरत होती है, उसी प्रकार पानी की भी जरूरत होती है। पानी का साधन बनाने के लिए पश्चिमी-पूर्वी कोसी नहर की चर्चा जोर-शोर से चल हीं रही थी। इसके साथ नदी-नाला की बाढ़ की बचाव के लिए नदियों को घेरने की जरूरत थी हीं। इसके साथ सिंचाई की जरूरत भी थी। बोरिंग से पाताल का पानी ऊपर लाकर खेतों को सींचा जाता है, यह बात लोग सिर्फ सुनते ही थे। वास्तविक रूप में कहीं नहीं था। वैसे गाँव-गाँव में चर-चाँचर भी और पोखर-इनार-कुआँ, डबरा-गड्ढा हैं ही, परन्तु इनसे सिंचाई की समुचित व्यवस्था होना सम्भव नहीं थी। एक बात यह कि गाँव-गाँव के पोखर कोसी-बलान-कमला नदियों की धारा में कट गये और मिट्टी से भर गये, दूसरी बात यह कि जिस गाँव में ऐसा नहीं हुआ, उस गाँव में छोटा-छोटा पोखर रहने से भी उनमें उतना पानी जमा भी नहीं रहता था, जिससे सिंचाई की क्षतिपूर्ति सम्भव हो पाती।

वैसे, गाँव-गाँव में पोखर वाले, अर्थात् जिसका पोखर है वे, खेत पटाने की कौन बात नहाने पर भी रोक लगा रखा था। कुछ गाँवों के पोखरों में नहाने के लिए अलग-अलग घाट बनाये गये थे, तो कुछ गाँवों में कुछ पोखरों में कुछ जाति-समुदाय को नहाने से रोका जाता था। वैसे,

अठारह गण्डा पोखरे वाले सीतापुर गाँव में सिर्फ पाँच हीं वैसे पोखरे थे जिनमें कुछ जातियों को नहाने पर रोक लगाया गया था। वैसे सहजानन्द स्वामी जी की छत्रछाया में गाँव-गाँव के कुछ पोखर सार्वजनिक हो गये, लेकिन अधिकांश गाँवों के अधिकांश पोखर बचे ही रह गये। वैसे जिस प्रकार मिट्टी उपज की बखारी है, उसी प्रकार पानी भी है। परन्तु ये सब समुचित व्यवस्था होने के बाद होगा।

गुलामी से आजादी की सीमा पर देश खड़ा हुआ, मगर हजार रंगों का अन्ध विश्वास भी और रूढ़िवादिता भी चिन्तनधारा को जकड़कर पकड़ ही लिया था, जिससे नई चिन्तनधारा बन ही नहीं पा रही थी। हजार वर्षों का विदेशी शासन से त्रस्त समाज अभी भी स्वतंत्रता का महत्त्व समझ नहीं पा रहा था, जिससे मनुष्य की जिन्दगी का आधार मजबूत होता। जिस प्रकार किसानी जिन्दगी अन्ध-विश्वासी थी, उसी प्रकार अन्य-अन्य छोटी-बड़ी धन्धा भी थी। एक तरफ जिस प्रकार गाँव-समाज के कुछ इने-गिने लोग समाज के आधार को मजबूत बनाने के विचार के संग क्रियात्मक रूप में भी एकतरफा कार्य कर रहे थे, उसी प्रकार अज्ञानता के अन्धकार में फैला समाज को अन्ध-विश्वास के अन्धकार की ओर समाज-विरोधी शक्ति ले जा रही थी, जिससे देश आगे बढ़ेगा या पीछे जायगा, ऐसा निर्णय करना कठिन था।

किसान का यह दुर्भाग्य था कि जो पानी कृषि के लिए अमृत है, वह मौनसून पर निर्भर था। साल के मात्र तीन-चार महीना वैसे हैं जिनमें बर्षा होती है और बर्षा के सम्भावित महीना भी माने जाते हैं, लेकिन मौनसून की भी ऐसी कोई निश्चित दौर है हीं नहीं कि इतनी बर्षा हर साल होगी हीं। सम्भावित बर्षा से किसी साल अधिक भी हो जाती है या किसी साल कम भी। इस बीच ऐसा भी होता हीं है कि किसी साल बर्षा नहीं भी होती है।

पिछली शताब्दी तक का ऐतिहासिक अनुभव लोगों को है हीं कि जैसा 19 वीं शताब्दी में पच्चीस रौदियाँ हुई, वैसे हीं 18 वीं शताब्दी में भी रौदी-सुखाड़ हुई हीं। रौदी तो रौदी है, इसका कोई सही आकलन तो नहीं न है कि इतना होगा या इतना हीं होगा? एक मौसम का भी होती है तथा दो-तीन-चार-पाँच के साथ बारह वर्षों की भी हो हीं चुकी है। बारह वर्षों की रौदी का अनुभव मिथिलांचल की मिथि मालिनी को भी है ही। जानकारी है कि बारह वर्षों की रौदी के बाद सीता जी का जन्म हुआ, वह भी तब, जब महाराजा जनक जी अपने हाथों से हल जोते, तब।

किसानों के लिए जैसे मिट्टी पूजनीय सम्पदा है, वैसे ही पानी भी है। मगर वह तो तब पूज्य होगी, जब उसकी विधिवत् आराधना होगी। लेकिन यहाँ तो ऐसा नहीं था। मिथिलांचल में अनिश्चित जीवन की स्थिति में सभी जी रहे थे, जिससे किसी साल समुचित बर्षा होने पर जिस प्रकार खुशहाली आती थी, उसी प्रकार समुचित बर्षा नहीं होने पर इसके विपरीत स्थिति भी हो हीं जाती थी। इसके साथ समाज में फैली हुई रूढ़िवादी चिन्तनधारा भाग्य-तकदीर को आगे कर, समाज का रूढ़िवादी विचार से चल रही थी। अर्थात्, नव चेतना के उदय को रोक रही थी। मनुष्य की जिन्दगी की एक-एक समस्या को हजार-हजार ढंग के विचारों ने इस तरह उलझा दिया था, जिससे लोग अपना जीना-मरना स्वयं नहीं जान पा रहे थे। बर्षा नहीं हुई तो कुछ लोग, खासकर महिलाएँ जटा-जटीन का नाच नाच-नाच कर मेंढ़क को ओखली में कूट-कूट कर ऐसे लोगों की आँगन में फेंकती थीं, जिसकी गिनती समाज में झगड़ालू लोग के रूप में होती थी।

रात की घटना सुबह होते हीं झगड़ा-लड़ाई का रूप ले लेती थी। इसमें भी सामूहिक रूप में फेंका गया मेंढ़क से कई परिवारों के बीच विवाद खड़ा हो हीं जाता था। इतना हीं नहीं, बर्षा नहीं होने से बड़ा से बड़ा भगताई– भगतपन भी होती थी और यज्ञ-जाप तो होता था, हीं।

एक तो उत्पादन नहीं होने से लोगों का घर खाली रहता था, जिससे जीवन मुश्किल था, इसके बावजूद भी पर्याप्त खर्च भी हुआ करता था।

मिट्टी-पानी के साथ किसानी जिन्दगी के लिए अच्छा-अच्छा बीज के साथ अच्छे अक्ल की जरूरत भी होती है। किसी भी देश की मिट्टी-पानी-खान-पहाड़ प्रमुख उत्पादित सम्पदा है। वैसे इन चारों के हिसाब से, अर्थात् मिट्टी-पानी-खान-पहाड़ से अपना देश बहुत सम्पन्न है। इसमें भी मिथिलांचल तो और अधिक सम्पन्न है। मिथिलांचल की जैसे मिट्टी पवित्र है वैसे पानी भी गुणग्राह्य के साथ पर्याप्त भी है। कई दर्जन नदियाँ जिस तरह साल भर बहती हैं, उसी प्रकार मौसम के अनुसार बर्षा भी होती हीं है। दुनियाँ का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जिसकी मिट्टी ऐसा उर्वर हो, उपजाऊ हो। यदि किसी देश की मिट्टी ऐसा उर्वर है भी तो उसका दूसरा साधन ऐसा नहीं है, जैसा अपने लोगों का है। कृषि का पैदावार मौसम के अनुकूल भी होता हीं है। इसमें भी अपना देश अन्य-अन्य देश से अधिक अच्छा है, क्योंकि कुछ देश ऐसे हैं जहाँ साल भर एक हीं तरह के मौसम रहता है अथवा एक से आगे बढ़कर डेढ़-दो मौसम होते हैं। तात्त्पर्य यह कि कोई देश साल भर ठण्ढा ही रहता है तो कोई देश साल भर गरम ही रहता है। इससे भी विचित्र यह है कि किसी देश में तो बर्षा होती हीं नहीं है, तो किसी देश में साल भर बर्षा होती है। जिस देश में हर वर्ष साल भर बर्षा होगी, उस देश में कृषि-कार्य कैसे होगा? मगर वहाँ पर प्रकृति के अनुकूल ही पैदावार होता है।

अभी तक, अर्थात् 20 वीं शताब्दी के 5 वीं एवं 6 वीं दशक तक के बीच जो किसानों का देश भारत की किसानी जिन्दगी रह चुकी है, वह अन्य अनेक देशों से पीछे रही, जिससे जो उत्पादन होना चाहिए, वह नहीं हो पा रही थी, उसके भी अनेक कारण थे। जिस तरह समुचित जानकारी का अभाव था, उसी प्रकार समुचित खेती करने से सम्बन्धित औजार के साथ समुचित व्यवस्था का अभाव भी था हीं। युग-युग से आ

रहे, जिस तरह कृषि-औजार थे, उसी तरह युग-युग से आ रहे कृषि-कार्य की तकनीकी भी थी। व्यवस्था वैसी नहीं थी, जिससे समुचित ढंग से खेती को संचालित किया जा सके। वैसी व्यवस्था की एक नहीं दो दिशाएँ हैं– मगर दोनों दिशाएँ अन्धकारपूर्ण थीं।

जिस प्रकार नयी सरकार गठित होने पर सैंकड़ों-हजारों ढंग की नयी-नयी समस्याएँ उठती है, उसी प्रकार देशी सरकार को गठित होने पर, उसमें भी अंग्रेजी हुकूमत के तुरन्त बाद देश भर में अनेक समस्या आगे में आई। वैसे सरकारी तंत्र को मजबूत और कमजोर होने का भी कारण है मगर अभी वे सब नहीं। अभी इतना ही, जो कि जिस जगह पेट की समस्या विकराल रूप में मुँह खोली हुई थी, उस जगह जिन्दगी की जो दूसरी मौलिक अवश्यकता थी, उस पर ध्यान कैसे जाता?

उसमें भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध साधारण लड़ाई दो देशों के बीच लड़ाई होने से जिसकी जमीन पर लड़ाई होती है, उसकी अर्थ-व्यवस्था कमजोर तो हो हीं जाती है। इसलिए सरकारी व्यवस्था कमजोर तो थी हीं, जिससे कृषि पंगु बनी हीं रही। यह हुई एक दिशा, दूसरी दिशा है, सामाजिक व्यवस्था।

अपने देश की सामाजिक व्यवस्था भी कृषि क्षेत्र के प्रतिकूल हीं थी। सामाजिक रूप से कभी भी कृषि के समुचित ढंग से व्यवस्थित करने का विचार समाज के मन में उठा ही नहीं। वैसे सोलह आन्ना भी नहीं उठा यह भी नहीं कहा जा सकता। गाँव-गाँव के बीच जब सुखाड़-रौदी फैल जाती थी, तब उन गाँवों के बीच बहती जो नदी रहती थी, उसे सामाजिक रूप में बाँधकर गाँवों के खेतों को सींचा जाता था। मगर इसमें भी जबर्दस्त बाधा उपस्थित हुई। बाधा यह कि जिसको जितना अधिक सिंचाई होती, उसका सहयोग उतना हीं कम हो जाता था। तात्त्पर्य यह कि जिसका खेत अधिक सींचे जाते थे, जिससे अधिक उपज होती थी, वह रौदी-सुखाड़-दाही की ताक में रहा करता था। ताक का कारण यह

कि अधिक दाम में अन्न-अनाज भी बेचा करता था, सूद-सवाई व्याज के साथ बन्धकी-भरना का लाभ भी उठा लिया करता था। लेकिन मध्यम वर्गीय किसान से लेकर सीमान्त किसान और खेती में काम करनेवाले मजदूरों की दशा कमजोर हुआ करती थी। जिस कारण, जिस तरह कृषि-क्षेत्र पंगु बना हुआ था, उसी तरह खेती पर जीवन-यापन अथवा निर्भर करनेवाले किसान और बोनिहार भी पंगु बने हीं हुये थे। वैसे जो हीं साधन या जो हीं सम्पदा थी, उसका उपयोग समुचित ढंग से किया हीं जा सकता था। कम साधन से अच्छा कार्य होता है और अधिक साधन रहते भी जब करने की इच्छा नहीं रहती है, तब कुछ भी नहीं होता है।

नई सरकार गठित होने के बाद भी कृषि क्षेत्र को नजर अन्दाज किया गया, जिससे मौजूद साधन के रहते हुए भी पेट की भूख रह गई। यही देश जो 1971 ईस्वी में भूख की समस्या को मिटायी, वह तो पहले भी मिटायी जा सकती थी, जो समस्या भूत सद्दश देश को पीछे धकेलती रही।

कृषि क्षेत्र में विस्तृत साधन मौजूद है, जो जैसे-के-तैसे पंगु बना रहा। न तो पानी का उपयोग समुचित ढंग से हुआ और न हीं मिट्टी का उपयोग हुआ। दुनिया के अनेक से अनेक छोटे-बड़े देश वैसे भी हैं, जो कृषि पैदावार से सम्पन्न आज से हीं नहीं बल्कि बहुत पहले से रहे हैं।

1952 ई. का चुनाव हुआ। अधिक से अधिक अधिकार आम जनता को दिया जा चुका था, मगर सामाजिक ढाँचा उसके अनुकूल नहीं था। इसलिए अधिक अधिकार-कर्त्तव्य का बोध भी और व्यवहार भी संविधान के पन्नों में दबे रह गये। वैसे सम्पूर्ण देश में चुनाव की पद्धति का अपना चुनाव हुआ। लेकिन लंगड़ा देश की लंगड़ी आजादी का जो होता है, वही हुआ।

सीतापुर गाँव में केवल लोअर प्राइमरी स्कूल हीं था, इससे आगे का नहीं था। वैसे सीतापुर के बगल के गाँव रोहितपुर में मध्य विद्यालय

तक की पढ़ाई होती थी। उस गाँव में भी उच्च विद्यालय नहीं था। सीतापुर और रोहितपुर से भी दस कोस हटकर नन्दपुर में उच्च विद्यालय था, परन्तु वहाँ पढ़ने के लिए छात्रावास में हीं रहना पड़ता था।

1953 ई. में हरिचरण ने मिडिल पास किया, वैसे, देवचरण भी साठ वर्ष की उम्र को पार कर हीं चुका था, जिस कारण पहले जैसा काम-काज जो वह किया करता था, अब वैसा नहीं कर पाता था। जैसी खेती पहले होती थी, वैसी भी अब नहीं होने से उत्पादन-पैदावार भी घटने लगा था। देवचरण का बेटा- राधारचरण अकिंचन था। खेती करने का उसमें हुनर नहीं था, या जो भी था, उसमें भी देह चुराता था। 'देह चुराना' का मुहाबरा यह हुआ- कार्य से छाह काटना, अर्थात् काम नहीं करना। राधारचरण का बेटा- हरिचरण भी 13-14 वर्ष का हो चुका था। साधन के अभाव में हरिचरण उच्च विद्यालय में अपना नाम नहीं लिखा सका। अपनी गिरती हुई शक्ति को देखकर देवचरण हरिचरण को कहा-

"बौआ, अब मेरी कोई भी आशा मत करो। फिर भी खेती करने का तरकीब जो मुझमें है अधिक-से-अधिक उसे तुझको बतला दूँगा।"

हरिचरण के मन में अभी तक नोकरी करने का कोई विचार नहीं जगा था। जागता भी कैसे, एक तो अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था, दूसरा गाँव का गाँव बेरोजगार युवकों से भरा हुआ था। अपने दादा जी का विचार हरिचरण मानकर बोला- "दादा जी, कार्य चाहे अपना हो या दूसरे का हो, कहीं तो मेहनत का हीं फल मिलेगा। इसमें भी जब अपना खेत-खलिहान है, तब यदि नौकरी करने के लिए जाऊंगा, तो अपनी खेती-वारी कैसे होगी?"

हरिचरण के नवोदित विचार पर देवचरण ने अच्छा ढंग से विचार किया। विचार में जितनी गम्भीरता आती गई, उसे देखकर उतना ही मन खुशी से हर्षित और आनन्दित होता था अर्थात् खिले फूल की भाँति

प्रस्फुटित अथवा फलदायक होकर बढ़ा चला जाता था। अपने परिवार से परिचय कराते हुए देवचरण ने कहा- "बौआ हरि, पूर्वजों द्वारा अर्जन की गई जो सम्पत्ति थी, वह बीच की अवधि में बह गई थी, अर्थात् नीलाम हो गई थी, उसे मैं फिर से जीवित करता हुआ अपना बनाया। गाँव में नजर दौड़ाकर देखो कि कितने परिवार हैं, जिसे तीन बीघा खेत है। वह तो अपना हो ही गया है।"

बीच में हीं हरिचरण बोला- "हाँ, वह तो हो ही चुका है दादा जी।"

हरिचरण के स्थिर होते हुए विचार के वृक्ष को देखकर देवचरण ने और सिंचित करते हुए कहा- "बौआ हरि, अभी तुम नवोदित सूर्य की भाँति लौहित लाल तो नहीं हो, मगर पीड़ित लाली के रूप में जरूर हो, जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे लालीपन घटता जायगा। इसलिए अभी अधिक नहीं कहूँगा। एक अन्तिम बात है, वह पूछ लेता हूँ।"

पिपाशु पक्षी की भाँति हरिचरण बोला- "क्या पूछना चाहते हैं, दादाजी?"

देवचरण ने कहा- "बौआ, मौखिक परीक्षा की तरह पूछता हीं नहीं हूँ संकल्पित रूप से पूछता हूँ। अपना समर्पण अपने लिए करोगे या दूसरे के लिए?"

दादा जी का विचार सुनकर हरिचरण बोला- "दादाजी, अभी आप जीवित हैं, तो मेरा संकल्प या विकल्प ही क्या?"



5.

15 अगस्त 1947 ई. को लालकिला, दिल्ली पर स्वतंत्र देश का तिरंगा झण्डा फहराया गया। 30 जनवरी 1948 ई. को गाँधी जी की मृत्यु गोली लगने से हो गई। 26 जनवरी 1950 ई. को देश का अपना संविधान लागू हो गया। 1952 ई. में लोक सभा और विधान सभा के लिए भी चुनाव हो गया।

1952 ई. का आम चुनाव देश का ऐतिहासिक चुनाव था। ऐतिहासिक का यह अर्थ है कि जितना बड़ा देश भारत आज है उतना बड़ा भारत शासन की दृष्टि से पहले नहीं था। राज-दरवार से लेकर जमीन्दार, महंथाना आदि से देश भरा हुआ था। किसानों का देश भारत के रहते हुए भी किसानों की मूल पूँजी राज-दरवार से लेकर महंथाना-जमीन्दार तक के हाथों में फँसी हुई थी।

वैसे लोकसभा के चुनाव में जिस प्रकार देश का शासन (केन्द्र-शासन) काँग्रेस सरकार के हाथ आया, उसी प्रकार राज्य का शासन भी काँग्रेस के हाथ में आया। मगर केन्द्र में भी या राज्यों में भी एकतरफा काँग्रेस के ही प्रतिनिधि नहीं पहुँचे थे, अनेक राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि लोग भी पहुँचे थे। दिल्ली के शासन में जिस प्रकार पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में काँग्रेसी सरकार बनी, उसी प्रकार अनेक पार्टियों के बीच कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि भी विरोधी दल के नेतृत्व में

खड़े हुए। कांग्रेस पार्टी के अलावे अन्य दलों से अधिक कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि थे। चुनाव से पहले सभी दल अपने-अपने घोषणा-पत्र के माध्यम से अपना-अपना कार्यक्रम निर्धारित कर चुके थे।

देश और राज्यों के बीच सामाजिक-आर्थिक विषमता तो थी ही। कोई-कोई राज्य औद्योगिक क्षेत्र में आगे होकर जिन्दगी की मूल समस्या के समाधान में भी आगे हो गया था, जिससे वहाँ रोजगार से लेकर स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सभी कुछ आगे हो गये थे। मगर अधिकांश राज्य पीछे हो गये थे। पीछे होना भी एक ही तरह का नहीं था, रंग-बिरंग का था। कोई राज्य अपनी जमीन को प्रगति की पटरी पर चढ़ा लिया था, तो कोई राज्य मुँह के आगे नहीं पीछे हीं सरक रहा था। केरल-बंगाल के साथ अन्य-अन्य राज्य भी अपनी अर्थ-व्यवस्था को पटरी पर चढ़ाने लगा था। वैसे, अपना बिहार भी उसमें पीछे नहीं था। घरेलू जमीन- वासहीह-जमीन का बेलगान करबा चुका था। बकास्त जमीन का आन्दोलन भी मिथिलांचल में जमकर हुआ। लेकिन बकास्त जमीन तो वैसी जमीन न हुई, जिसे अंग्रेज बहादुर सर्वे-सेटलमेन्ट से 1903 ई. में फाइनल किया था। मगर इसका मतलब कि पुस्त-पुस्तानी से लोग खेती करते नहीं आ रहे थे, वह भी बात तो नहीं ही थी, परन्तु उन लोगों के लिए जमीन का कोई अधिकार-पत्र नहीं था। इस कारण वे सभी बँटेदार के रूप में अपने को समझ रहे थे। जमीन उपजाते रहें, आगो-जनार से लेकर आधा-आधा बाँटकर खेत वाले को अपना कर्जा के सवाई ब्याज की दर से चुकाते हुए खाली हाथ हीं घर वापस रहें। इसलिए वैसे खेतिहर किसान के लिए नये तरीके से बटाई कानून की आवश्यकता हुई। वैसे, कुछ परिवार को बेलगान घरारी जमीन थी, लेकिन उन लोगों की घरारी–जमीन की लूट-पाट होती रही। वैसे, बेलगान घरारी पर रहनेवालों वा खेत उपजानेवालों के नाम से 'सिकमी बँटाई' के खतियान सर्वे में बन चुका था,परन्तु उसके अतिरिक्त भी आधे से अधिक बँटेदार छूटे हुए थे। मिथिलांचल की

साम्यवादी पार्टी अपने चुनावी घोषणा-पत्र में अपनी समस्या-समाधान का प्रस्ताव रख चुकी थी, खेती के लिए मिट्टी मूल पूँजी है। लिखित से मौखिक तक अपनी मूल समस्या जैसे भूमिहीन को बासभूमि, खेत उपजाने वालों को सिकमी की बटाई का अधिकार, अधिक जमीन रखने वाले जमीन्दार-महंथाना को भूमि हदबन्दी के अन्तर्गत लाना और उसकी शेष जमीन उपजाने वालों के हाथ में देना इत्यादि। इसके साथ, पीने से लेकर खेत की सिंचाई तक पानी की व्यवस्था, इसके लिए कोसी नहर के साथ गाँव-गाँव में अवस्थित पोखरों की जो समस्याएँ थीं, उसका समाधान सार्वजनिक रूप में हो... इत्यादि-इत्यादि। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए साम्यवादी पार्टी उठकर खड़ी हुई।

मिथिलांचल का सौभाग्य रहा कि यहाँ महान-महान साधक लोगों का आना-जाना सदियों से होता रहा। केवल आना-जाना ही नहीं रहा, वे लोग मिथिलांचल को अपनी कर्मभूमि बनाकर आजीवन सेवा करते रहे।

सन 1955 ई. में विनोबा भावे झंझारपुर आये। बड़ी सभा का आयोजन हुआ था। आज जो थाना से पश्चिम औद्योगिक क्षेत्र के रूप में देख रहे हैं, उस समय यह बहुत बड़ा मैदान था, जिसमें फुटबाल भी खेला जाता था, उसी मैदान में सभा हुई थी। भूदान आन्दोलन के रूप में जमीन का आन्दोलन विनोबा जी ने खड़ा किया। उनकी यह मांग थी कि लोग अपनी जमीन का छट्ठा हिस्सा जमीन दान किया करें।

एक ओर तेलांगना की सशस्त्र लड़ाई जारी थी और दूसरी ओर भूदानी आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन में प्रेम-पूर्वक स्वेच्छा से अपनी जमीन दान की जाती थी। गाँव-गाँव में भूदान कमिटियों का गठन किया गया।

परिवार के रूप में जिस तरह जीविका के लिए खेत और खेती की समस्या थी, उसी तरह ग्राम-समाज के रूप में भी अनेक समस्याएँ थीं।

एक ओर नव स्वतंत्र देश, दूसरी ओर धरती से आकाश तक अनेक समस्याएँ सभी के सामने उपस्थित हुईं। गाँव में एक ओर जिस तरह पेट की समस्या थी, उसी तरह दूसरी ओर वस्त्र, आवास, शिक्षा और चिकित्सा की समस्याएँ भी थीं। गाँव-गाँव में हैजा, चेचक, मलेरिया इत्यादि अनेक संक्रामक बिमारियों का प्रकोप होते रहते थे। जिस कारण अनेक लोग मरते थे। न तो पढ़ने-लिखने के लिए विद्यालय था और न हीं बीमारी के ईलाज के लिए कोई चिकित्सा की सुविधा। इसके बीच अन्धविश्वास इस तरह फैलता गया कि मनुष्यों को समुचित दिशा की ओर बढ़ने नहीं देता था। "अन्हार घर में साँपे-साँप" सदृश वातावरण बना हुआ था।

राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के बीच भी अपनी-अपनी ऐसी समस्याएँ थीं, जिसे अर्थाभाव में कुछ कर हीं नहीं पा रही थीं। वैसे अर्थाभाव भी था, परन्तु मूल अभाव था, कुशल कार्य करने वालों का।

मिथिलांचल सब दिनों से नदी-नाला का ईलाका रहा है। दर्जनों नदियाँ मिथिलांचल के बीच हैं। उस नदी-नाला में भी सभी नदियों की गति-विधि एक जैसी नहीं हीं है। कुछ नदी ऐसी है, जो अधिक काट-खोंट करती है, और कुछ ऐसी है, जो बहती तो है, साल भर तक मगर सन्तुलित गति से। इसके साथ मृत नदी भी है हीं। मृत नदी का अर्थ हुआ कि वैसी नदी जो बरसात काल में कुछ दिनों तक बहती तो है हीं, परन्तु रहती है सभी दिन सूखी हीं। जिससे न तो उस जमीन में उपजा- बारी होती है और न हीं उपयोग का दूसरा कार्य। इसके साथ मिट्टी, अर्थात् उर्वर शक्तिवाला खेत की मिट्टी बह जाती थी और उसके ऊपर दोमट बालू भर जाता था।

कोसी-कमला नदी का उपद्रव सबके सामने है। उसके भी रोक-थाम के लिए मिथिला का किसान उठकर खड़े हुए। कोसी नदी के दोनों

तटों को बाँधकर उस पानी का उपयोग सिंचाई के लिए करने की योजना बनाई गई। बाँध–तटबन्ध के साथ फाटकवाला पुलों और नहरों की भी योजना बनाई गई। उसके साथ बिजली– पन बिजली उत्पादन के लिए, डैम बनाने की आवाज भी उठी, हीं थी। वैसे देश नया-नया स्वतंत्र हुआ हीं था। जिससे देशवासियों में स्वतंत्रता का उत्साह भी बना ही हुआ था। कोसी नदी के दोनों तट-बन्ध बनाने के लिए एकाएक जन-सैलाव उमड़ पड़े। अर्थात् जन-आन्दोलन के रूप में जन-सहयोग हुआ। गाँव-गाँव से लोग अपना-अपना श्रमदान करने के लिए पहुँच गये। बाँध भी बन गये, नेपाल सीमा के बीच फाटकवाला पुल भी बने। सभी के मन में विश्वास हुआ कि दोनों देशों की जमीनों की सिंचाई होगी। मगर आज 70 वर्ष लगभग बीत जाने के बाद भी कोसी नहर की गति क्या है, यह सभी के सामने है। देश की आजादी की लड़ाई में जिस पीढ़ी ने बलिदान दिया उसकी तीसरी पीढ़ी गुजर रही है, गाँव-घर छोड़कर वे सभी लोग पलायन कर रहे हैं।

जिस प्रकार अपने देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध 1935 ई. के बाद जन-आन्दोलन उग्र हुआ था, उसी प्रकार दुनिया के बीच भी युद्ध जारी था, जिसको द्वितीय विश्व-युद्ध के रूप में जाना जाता है। दो भागों में बँटकर दुनिया के बीच जबर्दस्त लड़ाई फँस चुकी थी। प्रथम विश्व-युद्ध के भुक्तभोगी जर्मनी हो चुका था। 1917 ई. में रूस में साम्यवादी पार्टी के हाथ सत्ता आ चुकी थी। द्वितीय विश्व युद्ध में एक ओर साम्यवादी देश और दूसरी ओर साम्राज्यवादी देशों के समूह आमने-सामने आ चुके थे।

वैसे दुनिया का इतिहास लड़ाई की घटनाओं से भरी हुई है, लेकिन अभी तक की लड़ाई जो दो देशों के बीच रही, वह एक विचार की लड़ाई कहें या कि एक धारा की, के बीच रही। क्योंकि एक हीं विचारधारा का शासन-तंत्र अपने-अपने बाजार के लिए लड़ा था, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध

जिसे शीत-युद्ध भी कहते हैं, वह युद्ध वैचारिक रूप में हुआ था।

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद नये-नये अनेक देशों ने साम्यवादी शासन को अंगीकार कर लिया। 30 सितम्बर 1949 ई. को हीं चीन ने माओत्से तुंग के नेतृत्व में साम्यवादी शासन अंगीकार कर लिया। जो उस समय में भी सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश था।

द्वितीय विश्व-युद्ध से पहले दुनिया के अनेक देश साम्राज्यवादी देशों के उपनिवेश थे। हमारा देश भारत भी, आजादी से पहले, उपनिवेश था हीं।

उन सभी समाजवादी देशों की एक हीं मंशा थी कि उपनिवेश देशों को लूट-खसोट कर स्वयं समृद्धशाली बने रहें। आम जनता के जीवन से कोई भी मतलब नहीं था। मनुष्यों की जिन्दगी जानवरों की जिन्दगी से बदतर बनी हुई थी। उन बदतर देशों में हमलोग भी थे, अर्थात् भारत देश भी। द्वितीय विश्व-युद्ध में कुछ साम्राज्यवादी देश परास्त हुये और साम्यवादी देश– सोवियत संघ भी सभी तरह से जर्जर हो गया। लेकिन जो कुछ हुआ, इसके बावजूद भी सोवियत संघ के आम-अवाम ने अपने देश की सत्ता को कायम रख लिया। दुनियाँ के जनगण अपना अस्तित्व को भी पहचाना। जिससे युद्ध समाप्त होने के बाद भी देश-देश के भीतर जन-आन्दोलन जोर पकड़ लिया। दुनियाँ के बीच दोनों विचारधारा– अर्थात् पूँजीवादी-साम्राज्यवादी और समाजवादी-साम्यवादी अपने-अपने गति से बढ़ने लगे। एक-एक करके कई देश साम्राज्यवादी जाल से निकल कर साम्यवादी विचारधारा के अनुकूल अपनी प्रगति का रास्ता स्वयं बनाने लगे। जिस कारण कई दर्जन देश साम्यवादी-व्यवस्था को अपनाये।

हम सभी एशिया महादेश में हैं, जो अन्य महादेशों से सघन आवादीवाला महादेश है। चीन में साम्यवादी शासन स्थापित होने के बाद

वियतनाम में भी साम्यवादी आन्दोलन जोर पकड़ लिया। वैसे छोटा-मोटा देश वियतनाम भी है और कोरिया भी है, परन्तु दोनों के बीच जबर्दस्त लड़ाई फँस गई। कोरिया बँटकर दो भाग होकर दो देश बन गये। लेकिन वियतनाम बँटे तो नहीं, परन्तु आज तक की दुनिया की ऐतिहासिक लड़ाई में सबसे अधिक दिनों तक लड़ने वाले देशों में अपना प्रथम स्थान तो बना हीं लिया है। वियतनाम लगभग 34 वर्षों तक लगातार लड़ता रहा। हो-ची-मिन्हके नेतृत्व में वियतनाम का युद्ध हुआ था। बम-वारूद का प्रभाव वियतनाम के एक-एक ईंच जमीन की उर्वराशक्ति को नष्ट कर दिया। परन्तु साम्यवादी शासन बनते हीं वहाँ के जन-गण, देश भक्त लोगों ने अपनी-अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर देश को समृद्धशाली और उन्नतशील बना ही लिया।

देवचरण जिस प्रकार अपनी आँखों से देश के शासन का उतार-चढ़ाव देख चुके थे, उसी प्रकार अपने परिवार का उतार-चढ़ाव भी देखते आ रहे थे। 1920 ई. से पहले जो देश की आजादी का आन्दोलन था, वह प्रारम्भिक अवस्था में था, इस कारण आम जन-गण तक नहीं पहुँचा था। लेकिन गाँधी जी का जब चम्पारण सत्याग्रह हुआ, उस दिन से देश के जन-गण के बीच नई शक्ति ने जन्म लिया। 1917 ई. मे गाँधी जी चम्पारण आये थे। स्पष्ट मुद्दा उनका था। मुद्दा था– जमीन्दार का शोषण। कैसे जमीन और जमीन की उपज की लूट के साथ अन्य-अन्य कई लूट धनी वर्ग गरीबों का करते थे, वह विचार सार्वजनिक मंच पर उठा। वैसे आज से पहले अंग्रेजी नीलहा व्यापारी जमीन की छीना-झपटी कैसे करता था, वह बात नील की कोठी के आस-पास के किसान अच्छी तरह से जानते हीं थे, लेकिन वह शोषण सीमित दायरे में था, इस कारण कम हीं लोगों की नजर उस ओर गई थी।

नील की उपज के लिए अन्न की उपज से अधिक उर्वर शक्तिवाली

जमीन चाहिए। एक बार जिस खेत में नील की खेती हो जाती थी, वह खेत 4-5 वर्ष के लिए उसर जैसा हो जाता था। तेपटा के हिसाब से किसानों का खेत नीलहा व्यापारी लेते थे। तेपटा का अर्थ हुआ कि 6 कट्ठा के खेत में 2 कट्ठा में पहले वर्ष नील की खेती करवाई जाती थी। लगभग 2 वर्ष एक बार के नील की फसल में समय लगता था। मगर वह आन्दोलन से पहले ही, अर्थात् 1920 ई. से पहले हीं समाप्त हो चुका था।

नील की खेती से लेकर सिकमी, भाउली इत्यादि जमीन की निलामी तक देवचरण देख चुका था। अपने पूर्वज की भी जमीन कैसे नीलाम हुई थी, वह भी अपने पिता जी के मुँह से सुन चुका था। इसके साथ अपने पूर्वज की जमीन फिर से स्वयं कैसे वापस करवाया, वह भी जान रहा था। अपने पारिवारिक अस्तित्व के प्राणमय होता देखकर देवचरण के मन में जैसे खुशी हो रही थी, वैसे हीं अपनी अगली पीढ़ी– अकिंचन राधाचरण को देखकर दु:ख भी हो हीं रहा था। राधाचरण को कमाने-अर्जन करने का कोई अक्ल नहीं था। वैसे देवचरण अपनी जानकारी से राधाचरण को सुधरने का कम प्रयास नहीं किया, लेकिन मनुष्य का स्वभाव भी तो अपना स्वभाव होता है। जिसके अनुकूल लोग अपनी जिन्दगी भी बना हीं लेता है। गाँव में कहीं पर कीर्त्तन, अष्टयाम होता था, तो माता-पिता को बिना बतलाये हीं राधाचरण वहाँ पहुँच जाता था। खाने-पीने की व्यवस्था भी रहा ही करता था। वहाँ पर रहकर खाते-पीते भी थे। उसी प्रकार कहीं पर जब नाच हुआ या कि भोज-भण्डारा हुआ तो राधाचरण चुपचाप, अर्थात् परिवार में किसी को बिना बतलाये वहाँ पर चला जाता था। भले ही उसको गलत नजर से भी देखा जा सकता था, लेकिन वह तो नहीं था। देवचरण के द्वारा लाख कोशिश करने के बाद भी राधाचरण में कोई सुधार नहीं हुआ। अर्थात् राधाचरण को न तो श्रम करने का ज्ञान हुआ और न ही श्रमजीवी का ज्ञान प्राप्त हुआ।

वैसे देवचरण अपने परिवार का संचालन और कारोबार का भी संचालन अपने विचार से ही किया करते थे, जिससे किसी प्रकार का वैचारिक व्यवधान भी नहीं होता था, लेकिन परिवार के बीच मनुष्य की जिन्दगी तो नदी की धारा के समान प्रवाहित होती हीं रहती है, उसमें कुछ बाधा तो देवचरण की नजर के सामने पड़ती ही थी। पड़ती भी क्यों नहीं? मनुष्य धरती पर बहती नदी नहीं है, वह तो चेतनशील जीवन की धारा है। जिससे चेतनशील मनुष्य की चेतना पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। वैसे भी देखते हैं कि जब सभी नदियों में धारा के बीच बालू भर जाता है– अर्थात् पानी के बहाव के बीच बालू जमा हो जाता है– तब पानी की धारा को रोकता है, जिस कारण धारा का प्रवाह रूककर दूसरी-तीसरी दिशा में मुँह बनाकर बहने लगती है, उसी प्रकार से न मनुष्यों के वंशगत विचार के प्रवाह में श्रमहीनता आने से दिशाहीनता आ ही जाती है। इसलिए देवचरण को चिन्तित होना स्वाभविक था।

संयोग बना, जिस प्रकार एक ओर देश का शासन विदेशी से स्वदेशी के साथ आया, उसी प्रकार अपने पूर्वजों की अर्जित जमीन का अधिकार भी दूसरे के हाथ से देवचरण के स्वयं हाथ में आ गया। स्वतंत्र देश के स्वतंत्र किसान के रूप में देवचरण अपने को देखने लगा। भले ही राधाचरण की स्थिति से भी आगे की पीढ़ी के भविष्य की चिन्ता, स्वाभाविक रूप में हो रही थी। वैसे हरिचरण भी 13-14 वर्ष का हो ही चुका था, परन्तु जिस परिवार में पिता, बाबा, परबाबा जीवित रहते हैं उस परिवार में 13-14 वर्ष वाले को लोग बच्चा ही समझते हैं, जिसकी अवस्था को खानेवाला और खेलनेवाला भी माने जाते हैं, मगर ये सभी परिवार में नहीं होता है। ऐसे परिवार भी हैं, जिनमें पिछली पीढ़ी की आकस्मिक निधन होने पर वा किसी कारणवश पिता-दादा की छाया हटने पर परिवार का भार बच्चे पर पड़ता है, जिससे खाने-खेलने वाला स्थान परिवार की चिन्ता-फिक्र और भारी-भारी कार्य का बोझ भी छोटे

उम्र वाले बच्चे के सिर पर चढ़ता है। वैसे हरिचरण के शरीर को देखकर देवचरण के मन में इतनी आशा तो बनी हुई ही थी कि भीर-कुभीर का भी भार पोता उठा ही सकता है, लेकिन यह उसके साथ अन्याय-अनुचित हो ही गया। जहाँ विकल्प रहता है, वहाँ संकल्प की धारा भी गतिमान रहती हीं है, मगर जहाँ विकल्प ही नहीं, वहाँ तो धारा में थोड़ी-बहुत रूकावट होती है। खैर, यह केवल एक देवचरण के ही साथ हुआ, वह भी बात नहीं है। वैसे देवचरण के साथ जो समस्या है, वह दूसरे से थोड़ा सटा हुआ है और थोड़ा हटा हुआ भी है। सटने का तात्त्पर्य यह हुआ कि जिस परिवार में बाबा, पिता और पुत्र– तीनों पीढ़ियों के तीनों जीवित हैं। उसी प्रकार हटने का कारण यह है कि देवचरण स्वयं उम्रदराज हो चुका है, जिस कारण यौवन के सामर्थ्य का वह रूप दुर्बल हो गया है, जिससे वह कठिन शारीरिक परिश्रम किया करता था। उसी प्रकार दूसरी पीढ़ी में राधाचरण जीवित रहते हुए भी श्रमचोर होने से श्रमहीन हो चुका है। लेकिन परिवार तो परिवार है। उसकी अपनी नियमित क्रिया होती है, जिस बल पर वह खड़ा होकर आगे की ओर बढ़ता जाता है।

प्रात:काल के आठ बजे का समय। परिवार का पहला कार्य अर्थात् खेती-वारी का कार्य नहीं रहने से देवचरण को निश्चिन्तता रही थी। वैसे, माल-मवेशी की सेवा-कार्य आगे थी हीं। मगर जो समय खेती-वारी का था, उसमें कमी आने से कार्य पतला हो चुका था। दरवाजे के बरामदा की चौकी पर बैठकर देवचरण चाय पी चुका था। उसी समय हरिचरण को आँगन से निकलते देखा। देखते ही हरिचरण को पुकारते हुए बोला-

“बौआ, यहाँ आओ।”

बाबा की बात सुनकर हरिचरण नजदीक आकर चौकी पर बैठते ही बोला- “क्या बोले, दादा जी?”

हरिचरण की बात सुनकर देवचरण का मन जैसे पाताल से उड़कर

आकाश में पहुँच गया हो, वैसा ही हुआ। मगर उम्र भी तो उम्र है। उसका भी अपना गुण-धर्म तो है ही। इसमें भी देवचरण ईमानदारी से अभी तक परिवार की गाड़ी का जुआ खींचते आ रहे हैं, इसलिए स्थिर होकर बोले-

"बौआ, अभी तक परिवार का भार अपने माथे पर ढोकर गाड़ी के जुआ में कन्धा लगाकर मैं खींचता हुआ आ रहा हूँ, परन्तु अब वह सामर्थ्य मुझमें नहीं रहा, जिसकी जरूरत परिवार को है। इस कारण... ।"

'इस कारण' कहकर देवचरण चुप हो गया। लेकिन हरिचरण के मन में जिज्ञासा उठ गयी। हरिचरण बोला-

"बाबा।"

'बाबा' के अतिरिक्त हरिचरण कुछ नहीं बोला। मगर हरिचरण के मन के छिपा हुआ विचार देवचरण के मन को उद्वेलित कर दिया। जिससे रंग-बिरंग के विचार संकल्प-विकल्प के साथ उठने लगे, जिससे नवांकुर पोता को क्या कहता या क्या नहीं कहता, इस कारण देवचरण का मन बीच में हीं फँस गया। मगर शीघ्र हीं देवचरण के मन में उत्पन्न हुआ कि जिन्दगी का कोई भरोसा थोड़े ही हैं, वह तो बिना ठिकाने का है। अभी भी मर सकता हूँ वा 25-50 वर्ष जी भी सकता हूँ। तब तो बीच में एक समस्या उपस्थित हो ही चुकी है कि जिस रूप में परिवार को मेरे श्रम की जरूरत है, उसकी पूर्ति करने में अब अपनी दैहिक शक्ति के अभाव के कारण से कुछ-कुछ बाधा उपस्थित होगी हीं। मगर हरिचरण जैसा नयी शक्ति का उदय तो परिवार में हो ही चुका है, इसका सही ढंग से उपयोग करूँगा, तो किसी तरह की बाधा परिवार में उपस्थित नहीं होगी। देवचरण बोला-

"बौआ, अभी तो कार्य का समय है, इसलिए अभी इतना हीं विचार रखो। शाम के समय जब दुनियादारी से निश्चिन्त होऊँगा, तब सभी लोग तुम भी, तुम्हारी माँ भी और दादी भी एक जगह बैठकर विचार

लेंगे कि आगे कैसे चलना है। जिस तरह हल्का से भारी कार्य परिवार के बीच रहता है, उसी प्रकार नयी पीढ़ी से पुरानी पीढ़ी तक भी सभी हैं ही।"

हरिचरण बोला-

"वह तो है ही। लेकिन आप तो कुछ ऐसे हैं, तो भी, धान-गेहूँ की दौनी करने वाला खोह के जुते हुए बैल के जैसा मेहौता है। जैसे-जैसे खोह पर आप घुमायेंगे, वैसे-वैसे न आपके साथ बीच वाला और पैट के बैल जैसा हम सभी घूमेंगे।"

मुस्कुराते हुए देवचरण बोले-

"अभी के विचार को ध्यान में रखना। सन्ध्या काल हम सभी एक जगह बैठकर कोई-न-कोई रास्ता निकाल हीं लेगें।"



6.

जब से देवचरण अपने पोता को यह कहा कि 'बौआ, शाम के समय परिवार के सभी सदस्य एक जगह बैठ कर आगे का विचार करेंगे', तब से उनके मन में बार-बार यही प्रश्न नाच रहा है कि जिस तरह परिवार में अबोध-अज्ञानी हरिचरण है, उसी प्रकार तो अन्य दूसरे भी है, मगर परिवार का भार तो अब उन्हीं लोगों पर न पड़ेगा।

इसलिए कितना भार किस रूप में किसपर दिया जाय, इसका निर्णय करना साधारण बात नहीं है। मगर नहीं रहते भी भार उनको देना है। वैसे अभी स्वयं जी रहा हूँ और पिता-माता के साथ दादी भी हरिचरण के सामने हैं। जिससे जो कार्य भारी से भारी समझ पड़ेगा तो दूसरे-तीसरे से पूछकर उस कार्य को सही ढंग से किया भी तो जा सकता है। जहाँ ऐसा नहीं रहता है, वहाँ कार्य की सफलता में कुछ-न-कुछ गड़बड़ी होने की सम्भावना भी रहती ही है।

वैसे मनुष्य का सामाजिक जीवन वैसा है जिसकी जीवन-नदी समाज की नदी से होती हुई प्रवाहित होती है, जिससे देखने, जानने और करने की सम्भावना भी रहती है। हाँ, जिस जगह सामाजिक जीवन नहीं रहता, अर्थात् जहाँ व्यक्तिगत जीवन-धारा की नदी उससे भिन्न रहती है, उस जगह व्यक्ति हक्का-बक्का हो जाता है। मगर जिस जगह व्यक्ति की जीवन-धारा सामाजिक जीवन्त धारा के साथ प्रवाहित होती है, उस

जगह तो कुछ-न-कुछ सीखने और सम्भलने का उपाय रहता ही है।

जिस तरह देवचरण का मन अपने पोता के भविष्य की दिशा निर्धारित करने में उल्झा हुआ था, उसी तरह हरिचरण के मनमे भी बार-बार यह प्रश्न उठ रहा था कि दादा जी क्या कहेंगे, क्या पूछेंगे अथवा क्या करने को कहेंगे। खैर, जो कहेंगे, मगर बुझूँगा तो सुनने के बाद ही तो या बूझने के बाद हीं तो उसको सम्भालने की कोशिश करूँगा। बिना समझे हुए या कि बिना विचार किए हुए कार्य करने में कुछ-न-कुछ ऐसी बाधा आने पर समस्या में लोग पड़ हीं जाते हैं। जिस प्रकार नयी जगह, अर्थात् बिना देखा-पहचाना जगह वा बिना बुझा-समझा कार्य, नये लोगों के लिए अदृश्य जैसा रहता ही है। मगर वही कार्य सफलतापूर्वक करने के बाद जीवन शक्ति में तीव्रता तो आती ही है।

दिन बीत गया। वैसे देवचरण अपनी पत्नी से और पुत्रवधू के बीच पारिवारिक अन्य-अन्य गप्प-सप्प करते थे, परन्तु सामने की बात-विचार करने की योजना अभी तक दोनों में से किसी को भी न तो देवचरण ने ही कहा था और न ही हरिचरण ने ही कहा था। इस कारण हरिचरण की दादी को भी और माँ के भी मन में कोई विचार का बिन्दु तो उठा ही न किया था। वैसे, जब सभी एक ही परिवार में है और परिवार की जिन्दगी की बात भी है, जो कुछ-न-कुछ सभी को बुझा-समझा है ही, इसके बीच सामने की बैठक की जानकारी देना उतना महत्व नहीं न रखता है, जितना अन्य दूसरे के साथ रहता है। जिन्दगी की अच्छी-बुरी बात और कार्य की तो कुछ-न-कुछ जानकारी रहने पर आसानी से विचारें को फैलाना और कार्यों को कर लेना सहायक होता ही है। मगर यहाँ तो वैसा नहीं है। यहाँ तो पारिवारिक विचार भी है और कार्य भी है। हाँ, जो कुछ नया कार्य वा नया विचार ही रहता तब सामान्य जिन्दगी से दूर रहता जिससे कुछ-न-कुछ अच्छी-बुरी की सम्भावना रहती भी, लेकिन वह भी

तो नहीं न है।

सामनेवाला विचार और सभी का आगमन के बाद भी न तो देवचरण के मन में किसी प्रकार का उथल-पुथल था और न परिवार के अन्य दूसरे सदस्यों के बीच में हीं। सास-पुतोहु को जानकारी हीं नहीं थी, इस कारण उन दोनों के मन में उथल-पुथल की कोई सम्भावना क्यों रहती? देवचरण तो स्वभाव से ही परिवार में सहयोगी के रूप में पोता पर विहंगम दृष्टि रखे हुए थे, इसलिए उनके मन में किसी प्रकार की मलिनता क्यों रहती? हाँ, हरिचरण के मन में कुछ-न-कुछ उथल-पुथल जरूर था। दादा जी क्या कहेंगे.. क्या नहीं...। बर्षा के पानी के बुलबुले जैसा हरिचरण के मन में विचार उठते भी थे और स्वयं फूट-फूट कर विलुप्त भी हो जाया करते थे।

अपने निर्धारित समय के हिसाब से कुछ पहले हीं देवचरण दरवाजे पर बैठकर मन ही मन विचारने लगे कि किस तरह से हरिचरण को समझाया जाय। वैसे परिवार सब में ऐसे भी रहते हैं जो परिवार का सृजक रहा, वह सभी के कार्यों को परख-परख कर अलग-अलग सभी को करने के लिए कहते भी हैं, जिससे परिवार का सम्मिलित कार्य रहते हुए भी एक दूसरे के बीच दूरी रहती है, तात्त्पर्य यह कि सभी को सब कार्यों की जानकारी नहीं रहती है। वैसे ऐसा होने पर एक ऐसा विचार तो आ ही जाता है कि दूसरे के कार्य की जानकारी नहीं रहने से दूसरे के मन में यह उठ जाता है कि वही केवल कार्य करता है और दूसरा-तीसरा बैठा ही रहता है, इस कारण परिवार के सभी को जब सभी के कार्यों की जानकारी रहती है, तो सब के मन में ऐसे विचार का आगमन हो ही जाता है कि सब अपने-अपने कार्य के पीछे लगे हुए हैं, जिससे किसी के मन में कार्य नहीं करने की शंका का आगमन नहीं होता है। इसके साथ यह भी लाभ तो होता हीं है कि परिवार के सभी कार्य सबकी नजर में रहते है और किसी को बैठे रहने की शंका नहीं रहने से सभी के प्रति सभी के मन में

प्रेम भी बढ़ा रहता है।

देवचरण यह सोचकर कार्य के निर्धारण से पहले कार्य के पीछे लग गये कि जो कोई कार्य करने से पहले उस कार्य के भूत-भविष्य पर नजर दौड़ा देंगे, तो उस कार्य को सफल होने की अधिक सम्भावना बन जाती है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो कार्य के बहुत बिन्दुएँ भी गप्प-सप्प के क्रम में नजर पर नहीं भी चढ़ते हैं, जिससे विचार करने के बाद भी कुछ-न-कुछ बिन्दु छूटा रह जाने से कार्य में कमी होती हीं है।

देवचरण को दरवाजे पर बैठे हुए देखकर हरिचरण भी आकर बैठ गया। मगर बोला कुछ भी नहीं।

हरिचरण को चुप-चाप बैठा देखकर देवचरण के मन में उत्पन्न हुआ कि जब दोनों कार्य करने के क्रम में उपस्थित हो चुके है, तब जब चुप-चाप समय को निकलने दिया जाय, यह अच्छा नहीं होगा। देवचरण बोले-

"बौआ, जब हम दोनों कार्य पर विचार करने के लिए एक जगह बैठ गये हैं तो माँ को और दादी को भी बुला लो।"

दादा जी के आदेश में बिना कुछ जोड़-घटाव करते हुए हरिचरण ने आँगन जाकर दादी और माँ को भी जानकारी दी। वैसे वे दोनों- सास-पुतोहु भी बिना कुछ बोले टोके हरिचरण के साथ दरवाजे पर पहुँच गयीं। राधाचरण भी परिवार के प्रमुखजन की सीढ़ी पर था, इस कारण उसका रहना भी अनिवार्य होता, परन्तु अक्ल नहीं रहने के कारण परिवार का गौण-पात्र बन चुका था। होता भी ऐसा हीं है कि जिस परिवार में जो सदस्य जैसा कामकाजू रहता है वह अपने हुनर के हिसाब से पारिवारिक क्रिया में उतना संलग्न हो जाता है।

तीनों लोगों को देखकर देवचरण बोले-

"बौआ, जिस परिवार में हम सभी लोग हैं, वह परिवार एक हीं

लोग का नहीं, हम सबका है। इसलिए सबकी अपनी-अपनी उक्ति है। इस विचार को अच्छे ढंग से मन में स्थापित कर अपने-अपने को उसमें संलग्न रखना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो कुछ लोगों के कार्य और जवाबदेही में भी उदासीनता आ जायगी और कुछ लोग जो अपने परिवार को अपना समझकर सेवा करेंगे, वे दूसरे से अपने को महत्वपूर्ण समझेंगे हीं। इसलिए सबके बीच सबके कार्यों की जानकारी रहना जरूरी है।"

वैसे हरिचरण है तेरह-चौदह वर्ष का ही, मगर देवचरण के विचार को अच्छी तरह से समझ गया। वह बोला-

"दादाजी, यह तो हुई वैचारिक क्षेत्र की बात, लेकिन व्यावहारिक क्षेत्र तो इससे पृथक भी हो सकती है, कि नहीं?"

हरिचरण के विचार सुनकर अपनी सहमति व्यक्त करने के लिए देवचरण सिर हिलाते हुए बोले-

"मूल बात बौआ तुम ने कहा। परिवार तो कार्य की धूरी बनाकर हीं न चलता है। इसी सब पर बात करने के लिए हीं तो कहा था कि सब लोग एक जगह बैठ कर एक मत के रास्ते से परिवार को आगे बढ़ायेंगे।"

देवचरण के विचार सुनकर उनकी पत्नी–सिंहेश्वरी–बोली-

"हम दोनों सास-पुतोहु स्त्रीगण ही हुई, कितनी भी होंगी तो अपना घर-आँगन खेत-खलिहान तक ही होगीं। उसी प्रकार हरिचरण भी बाल-बोध ही हुआ। राधारचरण का कोई ठेकान–स्थान–भी नहीं है कि वह क्या है और क्या कर सकता है।"

पत्नी की बात सुनकर देवचरण मुस्कान देते हुए सिर डुला-डुला कर मन हीं मन विचारने लगा। पत्नी का विचार सोलह आन्ना सत्य है, लेकिन सत्य रहते भी सोलह आन्ना उचित कैसे कहा जा सकता है? हाँ, जिस परिवार में पुरुष जीवित रहता है, अर्थात् पुरुष-प्रधान परिवार में ऐसा

विचार सम्भव हो भी सकता है, लेकिन जिस परिवार में पुरुष नहीं रहता है, उस परिवार में महिला की ही न प्रधानता होगी। उस जगह इसका विचार कैसे सम्भव हो सकता है। मगर अभी तो ग्राम-समाज का विचार करने के लिए नहीं न बैठे हैं। अभी तो मात्र अपने परिवार का विचार करने के लिए बैठे हैं, अतएव अभी तो पुरुष-प्रधान ही परिवार हुआ। अच्छा होगा कि पहले अपने परिवार के भूतकाल की जानकारी संक्षेप में सबको बता दी जाय। जिस तरह किसी नदी के उद्गम स्थान से बीच की प्रवाहित होती हुई नदी की धारा अन्त में किसी अगम नदी या समुद्र में हीं समाहित होती है, उसी तरह से न परिवार की भी है। वैसे, पहाड़ का दूसरा रूप है कि वह धरती पर उठा हुआ रहता है, जिसकी चोटी पर चढ़ने में बहुत अधिक कठिनाई होती है, लेकिन उस जगह से नीचे उतरने में, मतलब धरती पर आने में, चढ़ाई जैसा मेहनत नहीं करना पड़ता है, जबकि रास्ता दोनों का अर्थात् चढ़ने और उतरने का मार्ग, एक ही रहता है। लेकिन यहाँ तो परिवार पर विचार करना है। परिवार का रास्ता नदी और पहाड़ों से भिन्न है, ही, क्योंकि नदी-पहाड़ जैसा परिवार की गति-विधि तो है नहीं। यहाँ तो मनुष्यों के बीच का रास्ता है, जिसमें सामाजिक परिवेश के साथ शासकीय परिवेश भी शामिल हैं। शासन तंत्र के अनुकूल परिवार का परिवेश बनता है। यदि शासन-तंत्र परिवार-पक्षी रहा तो सुगम होगा और यदि शासन-तंत्र प्रतिकूल रहा तो विपरीत परिवेश बनता हीं है। खैर, जो है जहाँ है वह वहीं पर रहे। यहाँ तो अपने बाप-दादा– पूर्वज द्वारा निर्मित परिवार है, जिसका अपना इतिहास है। मुस्कुराते हुए देवचरण अपनी पत्नी की ओर देखते हुए बोले-

"तुम्हारा विचार तो अच्छा है हीं मगर जब सभी लोग मनुष्य-वंश का मनुष्य हैं, तब देह-हाथ छिपाने से कुछ नहीं होगा।"

बोलने के क्रम में देवचरण बोल तो गये, मगर शीघ्र मन में यह बात उठने लगी कि बिना सोचे किस दिशा में वे बह गये। अभी तो हरिचरण

को परिवार का प्रमुख कर्त्ता के रूप में खड़ा करना है...।

बीच में ही हरिचरण बोला-

“दादा जी, अभी जिस विचार से हम सभी एक जगह बैठे हैं पहले उसका विचार करें बाद में समय रहने पर अन्य-अन्य बात-विचार करेंगे। न कोई दूसरा है और न आज ही तक समय भी है।”

वैसे हरिचरण के विचार से दादी के मन में कुछ खटांस जरूर हुआ। खटांस का कारण यह था कि अपने विचार पर से ध्यान हटाना, लेकिन बाल-बोध हरिचरण को जानकर अपना मुँह बन्द ही रखती है। जिस बात को देवचरण समझ गये। मगर उस विचार को पुन: जागृत नहीं करते हुए अपने पारिवारिक विचार उठाते हुए बोले-

“बौआ हरि, साठ वर्षों की पारिवारिक जिन्दगी और शासन के उतार-चढ़ाव का भी मुझे अनुभव है, जो तुम्हें नहीं है। इसलिए संक्षेप में पहले वह विचार भूमिका के रूप में जान लेना अधिक अच्छा होगा।”

जिस तरह स्थिर तालाब के पानी में या प्रवाहित नदी के पानी में तैरने की अलग-अलग कौशल की जरूरत होती है, अर्थात् तालाब में तैरने जैसे नदी में तैरेंगे तो डूब जायेंगे, क्योंकि प्रवाहित होती हुई नदी की धारा में तैरकर पार करने में दोहरी सावधानी की जरूरत होती है। प्रथम, नदी की धारा में नहीं बह जाय, और द्वितीय पार करना तो है ही। जो पोखर में नहीं होता है। पोखर या तालाब में मात्र एक ही सावधानी की जरूरत होती है- एक महार, से दूसरे महार तक जाना। हरिचरण बोला-

“दादाजी, परिवार की जो पिछली धारा रही, अर्थात् इतिहास, वह तो अब अतीत बन चुका है, उसको अब वर्त्तमान की नजर से नहीं हीं देखा जा सकता है, लेकिन जिस तरह वर्त्तमान अतीत पर खड़ा है और भविष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रयास कर रहा है, उसी प्रकार न उसको मजबूती के साथ पकड़ने की जरूरत है।”

वैसे परिवार में हरिचरण बाल-बोध के ही श्रेणी में है, लेकिन यही बाल-बोध न भविष्य में परिवार के खम्भा के रूप में खड़ा होगा। जैसे सुबह के सूर्य को देखकर लोग अनुमान करते हैं कि आज का दिन कैसा होगा, वैसे हीं हरिचरण की बात को सीमांकित करते हुए देवचरण बोले-

"बौआ हरि, परिवार में दो रंग के सदस्य होते हैं– पहला पुरुष और दूसरा महिला। अभी तक जो अपने सब लोगों के परिवार की धारा रही है, उसमें जैसे पुरुष के लिए घर-बाहर आना-जाना करना-धरना आदि सभी जगह खुले रहते हैं, वैसे हीं महिला के लिए सभी जगह तो बन्धन लगा हुआ है। पुरुष के रहते हुए यदि महिला परिवार से निकलकर पारिवारिक क्रिया-कलाप करना चाहती है, तो परिवार के साथ समाज के लोग भी अंगुली उठा ही देंगे।"

बीच में ही हरिचरण बोल उठा- "इसको कौन काटेगा.! ऐसा तो सब दिन से होता आ रहा है।"

पिछला विचार को देवचरण ने सोलह आन्ना स्वीकार भी कर लिया, परन्तु अतीत के स्वीकार किया गया विचार को भविष्य में कैसे स्वीकारनामा बनाया जाय, यहाँ आकर रूक गया। देवचरण जब एक ओर पीछे मुड़कर देखने लगता है, तो साफ-साफ दीख पड़ता था कि जो परिवार की पैतृक सम्पत्ति थी वह तो नष्ट हो चुकी थी, मगर परिवेश ऐसा बना कि जो पिछली पीढ़ी की अर्जित सम्पत्ति थी, वह पुन: परिवार में जुड़ गयी। उसी प्रकार आज तक की जो सामाजिक राज-सत्ता रही है, वह गुलामी की रही है, अर्थात् विदेशी शासन की, जो (मिट्टी में मिलकर) मटियामेट होकर पुन: स्वतंत्र रूप में जीवित हो चुकी। मगर अपनी जो जिन्दगी रही है, उसमें और आगे की जो हरिचरण की जिन्दगी होगी, इसमें विपरीत सम्बन्ध है हीं। इसलिए पिछली जिन्दगी के इतिहास के पन्नों में समेट कर अगली जिन्दगी की दिशा-बोध करना जरूरी है।

..देवचरण बोले-

“बौआ हरि, अभी तक का जो पारिवारिक इतिहास रहा है, वह पंगु के रूप में रहा है। अर्थात् जिन्दगी में लोग स्वच्छन्द साँस लेते हुए विचरण करते हैं, वह तो नहीं रहा। फिर भी अपनी साठ सालों की जिन्दगी बीत गई। मगर अब जब अपनी ओर देखता हूँ तो समझ में आता है कि शरीर में वैसी शक्ति नहीं है जिसका उपयोग करता हुआ परिवार की गाड़ी को आगे की ओर ले जाऊँगा इसलिए जबतक जीवित हूँ तबतक जहाँ तक सम्भव होगा, वह तो करुँगा, हीं मगर... ।”

‘मगर’ कहकर देवचरण को चुप होता देखकर हरिचरण उत्सुक होता हुआ बोला- “तब?”

देवचरण बोले- “तब यही कि परिवार का जो पंगुपन रहा है, उसकी पूर्ति करता हुआ उस पंगुपन को मिटाता हुआ जिस तरह पक्षी आकाश में स्वच्छन्द जीवन का साँस लेता हुआ उड़ता है, उसी तरह परिवार को बनाना भी है।”

देवचरण का विचार सुनकर जैसे सब कोई पंगुपन की गम्भीरता को समझ लिया, वैसे सभी, सभी ओर नजर दौड़ाते हुए, गम्भीर होते हुए चुपचाप उठ-उठ कर अपने-अपने जीवन-क्रिया की ओर बढ़ने लगे।



7.

देश स्वतंत्र होने के बाद जमीन की लड़ाई सम्पूर्ण देश में फैल गई। 1947 ई. से पूर्व जैसे एकतरफा लड़ाई अंग्रेजी शासन के खिलाफ उठी थी, वैसे हीं स्वतंत्र होने के बाद देश में जमीन की लड़ाई फैल गई। लड़ाई क्यों न फैलती, आखिर कृषि प्रधान देश भी तो है। बिनोवा भावे के नेतृत्व में भूदान-आन्दोलन शुरू हुआ। आन्दोलन का नारा था- जमीन्दार अपने कुल जमीन का छठा हिस्सा स्वेच्छा से दान करे। वह जमीन खेती पर जीवन-यापन करनेवाले भूमिहीनों के बीच बाँट दी जाय।

वैसे जमीन की लड़ाई दो रूप में हुई। पहला, जमीन्दार (जमीनवाला) से बकास्त जमीन लेकर खेती करनेवाले बँटेदार को दिया जाय और दूसरा, भूदान में प्राप्त जमीन का बँटवारा भी हो। भूदान को यज्ञ के रूप में स्थापित किया गया।

खेत ऐसी सम्पत्ति है, जिसमें एक धुर-आधा धुर के लिए खून-खराबा, मार-पीट गाँव-गाँव में होता ही आ रहा था। हजारों हजार मुकदमा जिस तरह कोर्ट में फँसे हुए थे, उसी तरह हजारों हजार भूमिहीन भी कानूनी शिकंजे में फँसकर जेल जाते-आते रहे थे।

वैसे, गाँव-गाँव के संग-संग जिला और राज्य स्तर पर भी भूदान कमिटी बनी हुई थी, इसके साथ सरकारी कार्यालय भी बने, मगर जिस ढंग से भूदानी नारा था, उसके ठीक विपरीत उसका कार्यान्वयन होने

लगा। लेन-देन का अड्डा सरकारी कार्यालय भी और भूदान कमिटी भी बन गये। जिसका परिणाम यह होने लगा कि एक-एक जमीन का पर्चा तीन-तीन, चार-चार आदमी को मिलने लगा। एक ओर जमीन देनेवाला दाता अपनी जमीन छोड़ना नहीं चाहता था तो दूसरी ओर प्राप्तकर्त्ता के बीच सबूत को लेकर ऐसी उलझन लग गयी, जिससे गाँव-गाँव में लड़ाई फँस गई।

भूदान कमिटी के जो सदस्य लोग थे वे भी आग में घी देने का काम किया ही। वैसे, गाँव-गाँव में कुछ ऐसे दाता भी थे हीं, जिसने अपनी दी हुई जमीन को अपने विचार से भूमिहीनों को सुपूर्द भी कर दिया और अपने हाथों दखल-कब्जा भी करबा दिया। लेकिन ऐसे लोग एक-दो ही हुये। ग्राम-समाज की जैसी समस्या जमीन की थी, उस अनुपात में पाँच-दस प्रतिशत ऐसे हुये।

छठवाँ हिस्सा जमीन दान करने में भी एकरूपता नहीं रही थी। हाथ पसार भीख जैसा छठवाँ हिस्सा की जगह मात्र कुछ जमीन के नाम से पर्चा दे दिया जाता था। उसमें भी ऐसी जमीन दी जाती थी, जो उपजाउ भूमि नहीं थी। चौर-चाँचर परती-परांत वाली जमीन थी। वैसे गाँव-गाँव में गरीबों के लिए केवल जमीन उपजाने की हीं समस्या नहीं थी, रहने-बसने की भी समस्या थी। गाँवों की चौथाई आवादी ऐसी थी, जिसे घर बनाने के लिए घरारी की भी सुविधा नहीं थी।

गाँव-गाँव में तो नहीं परन्तु कुछ गाँवों को मिला-मिलाकर खादी भण्डार भी बनाये गये। गाँव-गाँव के समाज के कुछ जाति विशेष वैसे थे, खादी भण्डार उन्हें कच्चा माल देते थे और उनसे बुना हुआ कपड़ा खरीदते थे। वैसे कपड़ा बुनने का अक्ल केवल कुछ जाति-विशेष को था, इसका समाजीकरण नहीं हुआ था, जिससे कुछ जाति-विशेषके बीच हीं उद्योग सीमित हो गया। कपड़ा बनाने का जो कच्चा माल था, वह जाति

बन्धन को तोड़कर अधिकांश जाति का व्यवसाय जरूर बन चुका था, लेकिन वही व्यवसाय आगे बढ़ते ही कपड़ा बुनकर समाजिक बन्धन में फँस चुका था। उसमें भी खास कर मुस्लिम जाति के बीच 'जोलहा और धुनिया' का व्यवसाय माने जाने लगा।

हिन्दू-मुसलमान के बीच समाज बना हुआ है। हिन्दू इस व्यवसाय को नहीं अपनाया। मुसलमानों के बीच एक सौ से अधिक जातियाँ-उपजातियाँ हैं। उन सौ जातियों में सिर्फ दो जाति– जोलहा-धुनिया का रोजगार मात्र बनकर रह गया। जोलहा-धुनिया सभी गाँवों में हैं, यह भी बात नहीं है। किसी-किसी खास गाँव में है। उसमें भी परिवारों की संख्या के हिसाब से वह भी स्पष्ट नहीं हीं है। जिस कारण सभी गाँवों के जोलहा-धुनिया का यह व्यवसाय भी नहीं हीं बना। जिस-जिस गाँव का जुलहा-धुनिया का रोजगार कपड़ा बुनना नहीं था, वे सभी अपना-अपना अन्य-अन्य रोजगार जीविकोपार्जन के लिए करते थे।

गाँव-गाँव का खादी-भण्डार भूदानी लोग सब के लिए अड्डा बन चुका। तात्त्पर्य यह कि भूदान कमिटी के जो सदस्यगण थे, वे सभी खादी-भण्डार में हीं खाने-पीने से लेकर अपना-अपना डेरा भी रखते थे और खादी भण्डार के वस्त्र भी प्राप्त करते थे, जिससे एक-एक करके खादी भण्डार टूटने लगा। अन्तोगत्वा सब टूट गये। गाँव-गाँव का एक अच्छा व्यवसाय नष्ट हो गया।

खादी भण्डार टूटने से जैसे कपड़ा बुनकरों का रोजगार चला गया वैसे हीं सूत काटने वालों का रोजगार भी नाश हो गया। एक तो वैसे भी गाँव-गाँव में बेरोजगारी फैली हुई थी, उस पर एक और बढ़ गयी। वैसे मिथिलांचल में अनेक से अनेक संसाधन कल-कारखाना के लिए मौजूद हैं, परन्तु साधन रहते भी कल-कारखाना का अभाव रहा है। जगह-जगह पर चीनी का मिल और धान से चावल बनाने का मिल मात्र थे। वैसे, लघु उद्योग के रूप में सरसों-तोड़ी से तेल बनाने के साथ गन्ने से गुड़ बनाने का

हथकर्घा के रूप में भी थे, लेकिन वे भी वृहत रूप में नहीं थे। चीनी मिल भी साल भर नहीं ही चालू रहता था, साल के मात्र छह महीने ही चालू रहता था, छह महीने बन्द रहता था, जिससे मिलों में काम करनेवाले श्रमिकों के बीच ऐसी समस्या थी। वैसे कहने के लिए अवकाश के समय श्रमिकों को आधा वेतन दिया जाता था, परन्तु उसमें भी अनेक प्रकार की रूकावट थी। वह भी नियमित रूप से नहीं चलता था।

गाँव-गाँव में नकदी खेती के रूप में गन्ने की फसल थी परन्तु गन्ना भी तो सभ खेतों में नहीं उपजता है। नीचरस खेत जिसमें पानी बसता है, उसमें गन्ने की खेती नहीं हीं होती है। गन्ने की खेती के लिए ऊँची जमीन चाहिए। जो सभी गाँवों में नहीं है। वैसे जिस-जिस जगह चीनी मिल की स्थापना की गई थी, वह गन्ने उपजने वाली जमीन देखकर स्थापित किया गया था, मगर मिलों से दूर-दूर हटे हुए गाँवों के किसान नकदी खेती समझ कर गन्ने की खेती कुछ-न-कुछ करते थे। गाँव के खेतों से मिल तक गन्ना पहुँचाने का साधन रेलों की मालगाड़ी और बैलगाड़ियाँ हीं थीं।

रेलगाड़ी के स्टेशन-स्टेशन पर मिल का राटन बना हुआ था। जिस जगह क्षेत्र के किसान लोग बैलगाड़ियों से गन्ने पहुँचाया करते थे। वैसे गन्ने का रेट मिल का जितना रहता था, उसमें ढुलाई खर्च भी उसी मूल्य में से कटौती होती थी, जिससे स्थानीय किसान और दूर के किसानों की दर में अन्तर होता हीं था। उसमें भी नकद कारोबार भी नहीं होता था।

गन्ना की खेती करने में किसानों को अनेक समस्याएँ भी थीं हीं। एक तो सीजनल फसल रहने के कारण एक साथ ही सभी किसानों का गन्ना तैयार हो जाता था, जो समय पर नहीं कटने से वजन में कमी आ जाती थी, इसके साथ मिल की जो क्षमता गन्ने की पेराई की थी, उसी के अनुकूल हीं गन्ने का पुर्जा मिलता था, जिससे किसानों को आने-जाने की समस्या थी हीं। इसके बावजूद भी नकदी कारोबार नहीं था। महीना-महीना और साल-साल तक किसानों के गन्नों का दाम पीछे होते चले

जाते थे, जिससे गन्ना उपजाने के बाद भी किसान समय पर अपने पैसे से कार्य नहीं कर पाते थे। वैसे जिस मिल को जितने गन्ना से चीनी बनाने की क्षमता थी, वह उतना हीं न पेरेगा– बनायेगा। यदि किसान अधिक खेती कर लेते तो वैसे हीं खेत में शेष रह जाता था, जिससे खेती अविश्वासी बनती गई और मिल भी बन्द होने लगा।



8.

20 वीं शदी के छठवें दशक के अन्तिम समय में, अर्थात् करीब 1958 ई. में कोसी नदी मे फाटकवाला पुल नेपाल सीमा में भारत सरकार ने बनाया। कोसी के दोनों तट, अर्थात् उत्तर से दक्षिण कोसी नदी बहती है, पूरब में भी और पश्चिम में भी, बाँध बन गये। कोसी पुल के साथ-साथ पश्चिमी और पूर्वी मुख्य नहर बनाने में हाथ भी लगते गये। इस बीच 1958 ई. में कोसी में बाढ़ आ गई। वैसे बर्षा भी अधिक हुई थी, जिससे कोसी का बाँध कई जगहों पर टूट गये। ईलाके की फसल भी बह गई, वह तो बह हीं गई, गाँव-गाँव के घर-द्वार भी गिर गये और कुआँ-तालाब भी भरा गए। इतना हीं नहीं, नदी भी जहाँ बहती थी, उससे कुछ पश्चिम चली गई। कितने गाँव वैसे थे, जिनमें कोसी की बाढ़ नहीं आती थी, उन सभी गांवों में भी बाढ़ आने लगी। इसके साथ यह भी हुआ कि वह बाँध नदी में बाढ़ आने पर करीब-करीब हर साल किसी-न-किसी जगह टूटने लगा था और वह ईलाका दहाता रहा। कोसी का जो पूर्वी और पश्चिमी मुख्य नहर था, जिससे शाखा नहर बनाने की योजना भी थी, उन सभी जमीनों का सर्वे का कार्य भी होने लगा। अर्थात् नहर बनाने की नाप-जोख शुरू हुआ। परन्तु न तो अभी तक मुख्य नहर हीं पूर्ण रूपेण बन सका और न ही शाखा नहर सब में हाथ हीं लग सका।

20 वीं शताब्दी के सातवाँ दशक चढ़ते ही, अर्थात् 1962 ई. में चीन के साथ भारत की सीमा-विवाद को लेकर लड़ाई हो गई, जो देश

की अर्थ-व्यवस्था को और भी चरमरा दिया। इसके साथ गाँव-गाँव में यह अफवाह फैला कि अनेक ग्रह एक जगह आ गये हैं, जिससे जबर्दस्त हानि मनुष्यों को और माल-मवेशी को भी होगी। गाँव-गाँव के देवालय में अष्टयाम-कीर्त्तन, नवाह के साथ सवा महीनें, अढ़ाई महीनें के कीर्त्तनों के साथ यज्ञ-जाप भी होने लगे। सीतापुर में भी सवा महीने का कीर्त्तन ठाकुरबाड़ी में हुआ। मगर समय बीतता गया, किसी तरह के दैवी प्रकोप नहीं हुए।

1967 ई. में दबर्दस्त रौदी हुई। अभी तक देश अन्न के मामले में आत्म निर्भर नहीं बना था। दूसरे-दूसरे देश से अन्न का आयात होता रहा था। 1967 ई. की रौदी चार साल की हुई, जिससे कई तालाबों के साथ कुओं के भी पानी सूख गये और जिससे खेती के साथ पीने का पानी की समस्या भी उपस्थित हो गई। सीतापुर में एक बड़की पोखर भी है, जिसका रकबा पानी से लेकर भिण्डा सहित 52 बीघा का है। किंवदन्ति है कि वह दैत्यों के द्वारा खुदाई किया गया है।

गाँव के जो अन्य दूसरा पोखर और कुआँ थे, वे तो सूख चुके थे, आज बड़की पोखर का पानी सुखकर 5 कट्ठा पर आ चुका, जिसमें सिर्फ घुटने भर पानी बच गया है। उसमें भी इतना कचड़ा-गाद था जिससे पानी तक पहुँचना कठिन था। अन्न-पानी के अभाव में कितने माल-मवेशी मर गये और लोग भी मर चुके थे। गाँव-गाँव की जमीन वैसे हीं परती-परांत बन गई। उपजा-वारी का कोई स्थान नहीं रहा। अन्त में गाँव के लोगों ने उस बड़की पोखर से बिसाँढ़ खुन-खुन कर ला-लाकर उबाल-उबाल कर खा-खा कर अपना-अपना प्राण बचाया।

सरकार की दूसरी पंचवर्षीय योजना में दरभंगा-लहेरियासराय में अस्पताल बना, जिसमें दोनों तरह का लाभ आम जनता को मिला। जिस प्रकार बिमारियों के ईलाज की सुविधा मिली, उसी प्रकार डॉक्टरों का पढ़ाई भी होने लगा। वैसे, जिस हिसाब से दोनों की जरूरत थी, तात्पर्य

डॉक्टर की भी और बीमारी के ईलाज की भी, उतनी तो पूर्ति नहीं हीं हुई, फिर भी कुछ-न-कुछ तो हुई हीं।

1942 ई. में जो देश का जन-आन्दोलन अंग्रेजी शासन के विरूद्ध उठा, वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। अंग्रेजी शासन के खिलाफ के साथ-साथ अंग्रेजी वस्तुओं का भी वहिष्कार हुआ। उस समय इंग्लैंड के मेनचेस्टर का कपड़ा उद्योग दुनिया में बहुत आगे था। भारत जैसे विशाल देश के द्वारा विरोध होने से ईंग्लैंड के कपड़ा उद्योग को जबर्दस्त धक्का लगा। ठीक इसके विपरीत देश के, हथकर्घा को अवसर मिला, जिससे गाँव-गाँव में सूत काटने के साथ-साथ कपड़ा बुनने के रोजगार को अच्छा मौका मिल गया।

जमीन्दारी उन्मूलन से खेत की मालगुजारी जमीन्दार के हाथ से निकल कर बिहार सरकार के हाथ आ गई। अपनी-अपनी जमीन्दारी का चार्ज देने में सब जमीन्दार भी तरह-तरह के दाव-पेंच लगा-लगा कर ढेर किया ही। मगर जो हुआ सो हुआ, जमीन की मालगुजारी बिहार सरकार के हाथ आई ही। वैसे गाँव-गाँव की सभी जमीन की मालगुजारी एक जैसा नहीं हीं थी, लेकिन कम या अधिक तो थी ही। कम-अधिक का तात्त्पर्य यह हुआ कि जो जमीन ब्रह्मोत्तर, शिवोत्तर या अन्य किसी कारण से मालगुजारी से मुक्त थी, उन जमीनों की मालगुजारी टैक्स रूप में तो नहीं परन्तु 'शेष' रूप में लगने लगी थी, वैसे, 'शेष' नाम मात्र के रूप में था। टैक्स के अतिरिक्त जो टैक्स लगता रहा, शेष मात्र उतना ही था।

बिहार सरकार के कर्मचारियों के माध्यम से मालगुजारी वसूल की जाने लगी। गाँव के किसानों ने जमीन की निलामी से बचने का लम्बा साँस लिया।

वैसे अंग्रेज के समय में- 1888 ई. से 1903 ई. के बीच जमीन का सर्वे हुआ था, जिस आधार पर अभी तक जमीन का हिसाब-किताब चलता आ रहा था, उसमें अनेक तरह के पेंच लगते ही जा रहे थे। तात्त्पर्य

यह कि कुछ पेंच सर्वे के पहले से आ हीं रहा था, उसके अतिरिक्त भी अनेक तरह के नव-नव पेंच उठ-उठ कर खड़े हुए। इस कारण सर्वे की जरूरत हुई।

20 वीं शताब्दी के 7 वीं दशक में जमीन के सर्वे का कार्य शुरू हुआ। गाँव-गाँव में सर्वे की पहली सीढ़ी का कार्य किश्तवार रूप में शुरू हुआ। लेकिन उसमें किश्तवार करने वाला जो कर्मचारी आया, वह अन्दर-अन्दर ऐसी हवा बनायी कि गाँव के लोग, जमीनवाले सभी आँख बन्द कर अपने-अपने खेत का नक्शा बढ़ाने के लिए रिश्वत देने लगे। जिससे सर्वे क्या होगा कि पैसे का खेल शुरू हो गया। इससे गाँव-गाँव में और विवाद फँस गया।

1967 ई. की रौदी, आमजन से लेकर सरकार को भी कृषि के लिए पानी जरूरत है, उस ओर ध्यान खींचा। वैसे अभी तक के किसान के संस्कार में सिंचाई की कृत्रिम व्यवस्था के प्रति वैसा आकर्षण नहीं आया था, जिसकी जरूरत थी। मगर रौदी वह लाई। वैसे कोसी नहर की चर्चा किसानों के कानों तक जरूर पहुँच चुकी थी, मगर उस रूप में नहीं जिस रूप की जरूरत थी। कोसी का पश्चिमी मुख्य नहर जो था, उसकी खुदाई भी समुचित ढंग से नहीं होने से अभी तक वैसे ही लटका हुआ था।

इस बीच विदेशी सहायता से स्टेट बोरिंग गाड़ने की योजना बनी। उस बोरिंग का ऐसा पाइप और ईंजन है, जो हजार-हजार बीघा खेतों की सिंचाई कर हीं सकता है, वैसे बोरिंग ऐसे ईंजन से गाड़ा जाता था, जो एक दिन में हीं अर्थात् आठ से दस घन्टा में ही, बोरिंग गड़ जाता था। मगर जिस ईंजन से पानी निकाला जाता था, वह बिजली चालित था। जो बिजली कहीं पर थी हीं नहीं, और कुछ-कुछ जो थी भी, वह कम मात्रा में थी, जिससे बोरिंग के ईंजन का चलना कठिन था। इसके अतिरिक्त बोरिंग के पानी के लिए नाला चाहिए था, वह तो कहीं पर बने ही नहीं।

यदि कहीं-कहीं कुछ-कुछ बने भी, तो ऐसा घटिया कार्य हुआ जो ढह-ढह गये। एक तो वैसे ही लोग समझते हैं कि सरकारी कार्य और जेठुआ गरै (जेठुआ मेघ) का कोई भरोसा नहीं। वह हुआ भी। दर्जन-दर्जन बोरिंग गाँव-गाँव में गाड़े गये, लेकिन सिंचाई कहीं न हुई।

सरकार की भी नजर जब रौदी पर पड़ी, तो वह भी बोरिंग गड़वाने की योजना बनाई। बैंक के माध्यम से एक-तिहाई, एक-चौंथाई सब्सिडी पर बोरिंग के पाइप भी और पानी निकालने वाला पम्पसेट की भी व्यवस्था कराई। कहीं-कहीं एक-दो गड़ाये भी गये। मगर जितनी जरूरत थी, वह नहीं हुई।

1967 ई. में आम चुनाव हुआ। यह चौंथा आम चुनाव था। पहला, 1952 ई. में, दूसरा 1957 ई. में, तीसरा 1962 ई. में हुआ था और चौंथा, 1967 ई. में।

क्रमशः केन्द्र में सरकार बनी, पहला प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू, दूसरा लाल बहादुर शास्त्री, वैसे कुछ दिनों के लिए गुलजारी लाल नन्दा भी प्रधान मंत्री बने, और उसके बाद के प्रधान मंत्री पद पर आरुढ हुई इन्दिरा गाँधी।

चौथे आम चुनाव में बिहार का शासन बदला, वैसे केन्द्र में काँग्रेसी शासन रहा, परन्तु बिहार में काँग्रेस विरोधी सरकार बनी। वैसे, कई दूसरे-दूसरे राज्यों में काँग्रेसी सरकार बनी। काँग्रेस को छोड़कर अन्य सभी दल मिलकर बिहार में सरकार बनाई। नयी सरकार बनते ही बिहार सरकार के 33 सूत्री कार्यक्रम बना। मैट्रिक से अंग्रेजी विषय को उठाया गया। सातवाँ तक की शिक्षा भी नि:शुल्क की गई। इसके अतिरिक्त भी कार्यक्रम थे, लेकिन सरकार में जिस प्रकार वामपंथी शामिल था, उसी प्रकार दक्षिणपंथी भी था हीं। दोनों के बीच ऐसा विवाद फंस गया कि अठारह महीना बीतते-बीतते सरकार टूटकर मध्यावधि चुनाव हुआ।

1971 ई. में पाकिस्तान में भी चुनाव हुआ। उस चुनाव में पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच भी लड़ाई फँस गई। पश्चिमी पाकिस्तान कश्मीर, राजस्थान और पंजाब कटकर बना था और बंगाल से कटकर पूर्वी पाकिस्तान बना था। वैसे आजादी के पूर्व 1947 ई. तक भारत देश जितना बड़ा था, उसमें पाकिस्तान के कटने से कमी आई ही। जो एक देश था वह टूटकर दो बनकर तीन टूकड़े हो गये। वैसे, 1931 में अंग्रेजों के शासन में ही बर्मा देश भी अलग हो गया, जो भारत का ही पूर्वी भाग था। बाद में सिक्किम जो एक छोटा देश था, वह भारत में मिल गया।

इन्दिरा जी के नेतृत्व में केन्द्र सरकार थी, जो पूर्वी पाकिस्तान का साथ दिया। वैसे चार साल से जो रौदी आ रही थी, वह 1971 ई. में साल भर तक बर्षा होने के कारण समाप्त भी हुई। जिस तरह भारत पूर्वी पाकिस्तान की सहायता की, उसी प्रकार अमेरिका ने पश्चिमी पाकिस्तान की सहायता की। अमेरिका शक्तिशाली देश था ही, जिससे मुकाबला करना कठिन था। सोवियत संघ भी सैन्य-शक्ति में शक्तिशाली हो ही चुका था। इन्दिरा जी सोवियत संघ से सैन्य-संधि की। सोवियत संघ की सहायता से लड़ाई जमकर हुई। अन्तोगत्वा, बंगला देश स्वतंत्र देश के रूप में जन्म लिया। पाकिस्तान दो भागों में बँटकर पाकिस्तान और बंगलादेश के नाम से दो देश बन गये।

अभी तक अर्थात् 1971 ई. तक भारत जो अमेरिका से अन्न का आयात करता चला आ रहा था, उसको अमेरिका रोक दिया, जिससे पेट की समस्या अपने देश में उठ ही गई। जिन सभी देशों में अमेरिका अन्न का निर्यात करता था, वे सभी देश अमेरिका के प्रभाव में थे, इसलिए आगे का मुहरा बनकर किसी देश से अन्न का आयात करना कठिन था ही। सोवियत संघ भी अन्न के उत्पान में उतना सशक्त नहीं था, जितना

अन्य-अन्य शक्ति में था। वैसे, सोवियत संघ ठण्ढा देश है, इस कारण से भी वहाँ अन्न का उत्पादन कम होता था। खासकर साइबेरिया के जो भाग सोवियत संघ में था, उस भाग में 3 महिने से 9 महीने तक जमीन बर्फ में डूबी रहती थी, जिससे वहाँ कृषि कार्य में बाधा थी।

भारत में अनेक राज्य है और सभी राज्य की अपनी समस्याएँ है। कुछ राज्य ऐसे हैं, जिनमें बर्षा कम होती है और मिट्टी भी उपजाउ नहीं है। उसी तरह कुछ राज्य ऐसे भी है जहाँ अधिक बर्षा होने से वहाँ का पैदावार सीमित हो चुका है। इसके साथ कुछ राज्यों में खानेवाला अन्न की उपज तो कम होती है, परन्तु तेलहन, कपास इत्यादि की उपज अधिक होती है। सभ कुछ होते हुए भी कुछ राज्य ऐसे भी हैं हीं, जो अपना भरण-पोषण करते हुए अन्य-अन्य राज्य को भी अन्न देते थे। पंजाब राज्य, जहाँ की मिट्टी भी वैसा उर्वर शक्ति वाली नहीं है और बर्षा भी कम होती है, मगर वहाँ ऐसी कृत्रिम व्यवस्था की गई थी, जिससे अपेक्षाकृत अच्छा पैदावार होता था।

आज बिहार का नक्शा तो बदल चुका है, परन्तु जब उत्तर बिहार और दक्षिण बिहार था, अर्थात् बिहार और झारखण्ड मिलाकर जब एक राज्य था, तब उत्तर बिहार जिस तरह नदी-नाला से भरा था, जिससे फसलों का बह जाना तो होता हीं है, उसी तरह दक्षिण बिहार पहाड़, खान-खनिज से भी भरा हुआ था, जिससे कृषि क्षेत्र कम रहने से कृषि का पैदावार कम रहता हीं था।

मिथिलांचल सहित उत्तर बिहार में नदी-नाला तो है ही, मगर कृत्रिम व्यवस्था– नहर, बोरिंग का तो अभाव है ही, जिस कारण यहाँ के कृषि कार्य अविश्वासी बना ही हुआ है। रौदी-दाही का खेल सालों-साल चलता ही रहता है। जिससे अपने यहाँ का कृषि कार्य पंगु बना हुआ है। अभी तक जो कृषि-व्यवस्था अपने यहाँ रही है, वह प्राचीन पद्धति के अनुकूल रही है, जिससे उत्पादन की मात्रा निम्न से निम्नतर स्तर में रही है।

देश के सामने जब अन्न की समस्या उठकर खड़ी हुई, तब केन्द्र सरकार और राज्य के भी सरकारों की नजर कृषि तरफ उठी। वैसे अनेक-अनेक रंग के अन्न की खेती-वारी के लिए अनुकूल क्षेत्र, बिहार है ही, परन्तु उत्पादन का जो अनुपात होना चाहिए, वह नहीं हीं था। सरकार का ध्यान जाने से किसानों को अनेक प्रकार की सहायता की सुविधा मिली। पूसा, ढोली, सबौर इत्यादि जगह में कृषि-फार्म भी बना, जहाँ कृषि की पढ़ाई के साथ-साथ अनुसन्धान भी होने लगा। जिससे अनाज के अच्छे-अच्छे बीजों का अनुसन्धान हुआ, जो परम्परा से आ रहे पैदावार में बढ़िया रंगत लाया, डेढ़ गुणा-दो गुणा- तीन गुणा उपज में बढ़ोतरी हुई। जिस खेत में कच्चा मन ही उपजा होती थी, उसमें तीन-तीन, चार-चार पक्का मन की उपज होने लगी।

इसके साथ कोसी नहर के साथ ही साथ अन्य-अन्य नहर की खुदाई होने लगी, जिससे खेतों की सिंचाई होती। बैंक के माध्यम से एक-तिहाई-चौथाई अनुदानित रूप में बोरिंग-पम्पसेट लॉन के माध्यम से किसानों को मिलने लगा। जिससे गाँव-गाँव में कुछ बोरिंग होने से उपज में बढ़ोतरी भी हुई ही। अभी तक जिस खेत में मात्र राख-गोबर दिया जाता था, रासायनिक खाद का प्रयोग नहीं किया गया था, उन सभी खेतों में रासायनिक खाद के साथ-साथ गोबर-घास-पात से निर्मित जैविक खाद भी पड़ने लगा। उतना हीं नहीं किसानों को जैविक खाद बनाने की विधि भी सिखलायी गई।

अभी तक जो सरकारी विभाग में कृषि विभाग मृतप्राय था, उसमें जान फूँकी गई। प्रखण्ड में कृषि विभाग का एक अलग कार्यालय बनाया गया। गांव-गांव में कृषि-विभाग के कर्मचारियों की बहाली हुई, जिसके माध्यम से गाँव के किसानों को नये तकनीकों की जानकारी दी जाने लगी। प्रखण्ड स्तर पर सरकारी कृषि-फार्म भी स्थापित हुआ।

सरकारी माध्यम से किसानों को खाद-बीज, कृषि यंत्र अनुदानित

दर पर कर्ज के रूप में भी मिलने लगा। पूसा, ढोली, सवौर फॉर्मों के माध्यम से अन्न के साथ-साथ सब्जी-तरकारी भी और फल-फूल के बीजों के साथ पेड़ भी उपलब्ध कराये जाने लगे।

'जय-जवान, जय किसान' का नारा देश में फैलने लगा। अभी तक के जिस किसान का शक्ल-सूरत बिगड़ गया था, उस किसान में नया उत्साह जाग उठा, कृषि-पैदावार बढ़ गया, देश अन्न के मामले में आत्म निर्भर हुआ। आत्म निर्भर भोजन के मामले में जरूर हुआ, मगर कृषि पैदावार में पंगुपन बना हीं रहा। जहाँ कृषि आधारित, अर्थात् कृषि-पैदावार से, पैंतालिस प्रतिशत से भी ज्यादा कच्चा माल कारखानों को मिलता है, वह उपज ठमक कर ही रह गई। जिससे कल-कारखानें का विकास बिहार में नहीं हुआ।

वैसे, जिस तरह एक ओर प्रगति की दिशा में देश की शक्ति बढ़ गई, उसी तरह समाज के कुछ लोग उसका विरोध नहीं किया, वह भी बात नहीं हीं है। तरह-तरह का अफवाह उठा ही, जिससे प्रगति में बाधा नहीं हुई, यह भी नहीं ही कहा जा सकता है। अन्ध-विश्वास और रूढ़िवादी विचारधाराओं ने भी जमकर विरोध किया हीं।



9.

उम्र के कारण अपनी गिरती हुई दैहिक शक्ति को आँकते हुए देवचरण, हरिचरण का विवाह करना अनिवार्य समझा। अनिवार्य के दो कारण हुए– अपने आगे बढ़ते हुए परिवार को अपनी आँखों से देखना, जिससे मन में तृप्ति जगती है। दूसरा कारण, मन में यह भी हुआ कि वैसे हरिचरण को पढ़ाने-लिखाने से लेकर उसका ब्याह-दान करने तक का कार्य राधाचरण के कर्त्तव्य की सीमा में है, परन्तु बेटा को काबिल नहीं रहने और इसके साथ हरिचरण की जीवन-चर्या को देखकर देवचरण के मन में यह भी हुआ कि जैसे पोता क्रियाशील है वैसा ही क्रियाशील लड़की के साथ यदि विवाह कर दूगाँ तो अगली पीढ़ी का जीवन-यापन संतोषप्रद होगा ही। यही इच्छा न सभी परिवार में वृद्धजनों को होती है कि आज का जो परिवारिक जिन्दगी है, वह दिनों दिन आगे बढ़ती जाती रहे।

वैसे मिथिलांचल भी तो मिथिलांचल न है। जिस प्रकार कुशाग्र बुद्धि के लोग अनुकूल परिस्थिति पाकर अच्छी-से-अच्छी विद्वता, अच्छी-से-अच्छी कलाकारिता, अच्छा-से-अच्छा टेकनोलॉजी और अच्छी-से-अच्छी जिन्दगी के पारखी बनते हैं, उसी प्रकार न अच्छी-से-अच्छी योगवादी भी बनते हैं। अपने लोगों का मिथिला वही न है कि जो पत्नी को सहयोगी संगी समझते हैं, उस पत्नी को परिवार के किसी क्रिया-कलाप

का भार नहीं पड़े। इसलिए खाना बनाने के लिए रसोईया, पानी भरने के लिए पानी भरने वाली, कपड़ा-वस्त्र से लेकर घर की साफ-सफाई तक दूसरे के अनुकूल कार्य होते हैं। मगर वह भी नहीं, वैसे भी मिथिलांचल तो है हीं जिस जगह बेटा-पुतोहु अपने पीछे से आता हुआ खानदानी परिवार में पिता का अनुसरण करता हुआ सहयोगी बनकर तिल-तिल, कण-कण का अनुभव का अभ्यास करता हुआ कल के अनुकूल बनाता हुआ अपने भविष्य की अनुकूलता में ढालता हुआ निर्माण करता हुआ आगे बढ़ता है।

मिथिलांचल के उस हिस्सा में देवचरण, हरिचरण का विवाह करना मन में ठान लिया जहाँ अपने ढंग का सीमान्त किसान का परिवार हो। जिस परिवार का जन-जन अपने भविष्य के पीछे लगकर श्रम-संस्कृति को अंगीकार करता हुआ श्रमशील शीला की कर्मगति से निर्माण कार्य में लगा हुआ हो, वैसे यह इच्छा तो अपने मन की हुई परन्तु जिस जगह वर पक्ष हूँ वहाँ कैसे अपने ही खुद आगे बढ़कर कहूँगा कि अपनी कन्या का विवाह मेरे परिवार में करें, एक तो बिना मतलब का ही लोगों के मन में यह बात उठेगी कि जब तक लड़का में कोई अवगुण नहीं है, तो ऐसी चर्चा क्यों करते हैं। इसके साथ यह भी तो है हीं कि मनोनुकूल कन्या नहीं रहने से एक दो कन्यागतों को तो छाँट सकते हैं, परन्तु यदि इससे अधिक को छाँटना चाहूँगा तो बिना मतलब का हीं सब कहेंगे कि वह आदमी लड़का को लेकर ऐसा बटुआ सिलाकर रखा है कि कन्यागत अपना डीह-जमीन बेचकर भी लगा देंगे, तब भी नहीं भरेंगें।

संयोग बना हरिचरण का विवाह समस्तीपुर जिले के वैसे गाँव के किसान परिवार में हुआ, जो परिवार अपने कृषि क्षेत्र को वैसे विश्वासी रूप में बनाकर खड़ा किया है, जिससे इंजीनियर, डॉक्टर तक का समावेश परिवार में हीं होने की सम्भावना बनी हुई है। जैसा देवचरण खेतीहर पुतोहु चाहता था वैसा हीं पुतोहु मिलने से अपने सोलह वर्ष के

पोता का विवाह, सोलह वर्ष की कन्या परमेश्वरी के साथ किया। भूखा और दहेज के लोभी मन देवचरण का बना ही नहीं था। इसलिए हरिचरण के विवाह से सोलह आन्ना तृप्ति भी देवचरण को प्राप्त हुई।

समय के अनुकूल राधाचरण में सुधार नहीं ही हुआ। लेकिन व्यावहारिक रूप में दो भैसियों की सेवा करने का भार सिर पर आने से धीरे-धीरे सुधार होने लगा। सुधार देखकर देवचरण समय के अनुकूल भैंसियों की सेवा के साथ-साथ दूसरा-दूसरा कार्य करने के लिए राधाचरण को प्रेरित कर कार्यशील बना लिया। वैसे, उम्र बढ़ने से भी राधाचरण के मन में परिवार के प्रति प्रेम जागा, जिससे बकलेल-ढहलेल के समान जो घूमता-फिरता रहता था। उसमें सुधार हुआ, वैसे परिवार में परिवार जनों के बीच जो सम्बन्ध-सूत्र है, अर्थात् पिछली पीढ़ी का बेटा-भतीजा, नाती-पोता से लेकर वर्तमान पीढ़ी का भाई-भाभी और उसी तरह अगली पीढ़ी का चाचा, पिता, बाबा-नाना इत्यादि भी हैं। जिस प्रकार भक्त और भगवान के बीच अभक्त रूप है, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म के बीच है, जब दोनों के बीच का अभक्त रूप मिटकर भक्त रूप में परिणत होता है तभी जिन्दगी की सार्थकता सफल होने लगती है। जो हरिचरण और देवचरण के बीच हुआ। वैसे देवचरण किसानी जिन्दगी के मर्मभेदी रहते हुए भी अपनी जिन्दगी में पंगु बना रहा, परन्तु अपने पंगुपन के कारण को समझ कर देवचरण अपने को इसी जिन्दगी में समावेश करता हुआ परिवार की गाड़ी के जुआ को कन्धे पर रख कर उसे आगे खींचता रहा। जिससे अभाव को भी कुभाव नहीं समझकर सुझाव बनाकर जीवन-यापन किया ही, जो अपने सभी गुण-शील हरिचरण को दान-दक्षिणा में देते हुए इस दुनिया से स्वर्ग चले गए।

देवचरण की मृत्यु के चौदह वर्ष बीत चुके थे। हरिचरण बतीस-तैंतीस वर्ष का हो गया। तीन सन्तान भी हुई। राधाचरण भी चौंथापन में पहुँच गया।

देश में हरितक्रान्ति के रूप में नव जागरण हुआ। परम्परा से आता हुआ कृषि कार्य में परिवर्तन हुआ। जहाँ सिंचाई के लिए करीन उपकरण था, वह बदलकर वहाँ पम्पसेट आया। खेत जोतने के लिए जो जनक जी के समय का तीन-बीता हल था, उसके स्थान पर ट्रेक्टर आया। इतना हीं नहीं, धान कूटने वाला ढेकी बदल गया। चूड़ा कूटने वाला उखली बदल गया। पत्थर का जत्ता बदल गया, तेल पेड़ने वाला कोल्हू बदल गया, इत्यादि-इत्यादि, किसान परिवार से लुप्त हो गये और नई-नई तकनीक से निर्मित लोहे का इंजन लोगों के हाथ में आ गए। जिसकी रफ्तार दस गुणा से लेकर हजार गुणा तक है, वैसे जिस गति से किसानी तकनीक आगे से उत्तरी उस हिसाब से किसान नहीं उतर सके, परन्तु सोलह आन्ना नहीं हीं उत्तरा, यह भी नहीं हीं कहा जा सकता है। कोई उत्तरा या नहीं उत्तरा, चढ़ा या नहीं चढ़ा, मगर हरिचरण बतीस-तैंतीस वर्ष का जवान किसान के रूप में उतरा ही। वह भी उस भाव रूप में उत्तरा जिस तरह एक जवान हाथ में बन्दूक उठाकर अपनी मातृभूमि के रक्षार्थ सीमा पर माघ महीने की शीतलहरी का पाला, जेठ की गर्मी और भादव की बर्षा के आफत सहते हुए अपने दायित्व का निर्वहन करते हैं। उसी प्रकार कोई जवान किसान भी अपनी मातृभूमि के सेवार्थ भूख-प्यास मिटाने के लिए माघ मास का पाला, जेठ की गर्मी और भादव महीने का गर्जन-तर्जन को सहकर अपने दायित्व का निर्वहन करते हैं।

हरिचरण अपने तीनों बीघा जमीनों को समाजिक रूप में अदला-बदला कर रकवा के हिसाब से दस कट्ठा घाटा सहते हुए ढाई बीघा खेत एक जगह कायम किया। अपनी जिन्दगी के सूत्र को पकड़कर चार ईंच वाला बोरिंग और पाँच हॉर्स पावर वाला इंजन का साधन बनाकर अपनी फसल की सिंचाई की व्यवस्था भी की। उसके साथ ढाई बीघा खेतों में इतना कार्य खड़ा किया, जिसमें दिनभर दोनों प्राणी अपनी दुनिया समझकर अपने को सोलह आन्ना समर्पित किया। इतना हीं नहीं,

अस्पताल के डॉक्टर और कृषि फार्म के कुशल किसान जैसा अपने बाल-बच्चों को भी देख-रेख करा ही रहे हैं। इसके साथ-साथ साल भर की खेती पर नजर देता हुआ सुअन्न, सुफल और साग-सब्जी की जितनी जरूरत मनुष्य को है, इसका भी पैदावार करते ही रहे हैं।

मिथिलांचल के बीच अपना मिथिला बनाकर फल के नामों पर सिर्फ आम की गाछी-कलम हीं नहीं, साल भर का जो फलों का क्रम है उस हिसाब के फल, उसी प्रकार उसी हिसाब के सब्जी-तरकारी के साथ और अनाज भी उपजाते हीं रहे हैं।

किसान की साधक जो क्रिया है, उसमें तो हरिचरण अपने सफल स्वरूप देख रहे हैं। लेकिन आगे की जिन्दगी को देखकर हरिचरण जब अपना वृहद स्वरूप देखने लगते हैं, तो पंगुपन आगे में नाचता हुआ दिखाई देता है। वैसे, कितने भी पंगुपन हरिचरण के आगे में नाच करें, परन्तु किसानों के समाज में 'किसान-वृन्द' कहलाने का हकदार तो है ही।



Notes



साहित्य अकादेमी पुरस्कार आदि से सम्मानित महान साहित्यकार श्री जगदीश प्रसाद मण्डल जी का जन्म मधुबनी जिले के बेरमा गाँव में 5 जुलाई 1947 ईस्वी में एक किसान परिवार में हुआ। गुलाम भारत में जन्म होने के कारण इन्होंने समाज में व्याप्त शोषण और अत्याचारों को बहुत नजदीक से देखा और अवलोकन किया। एम. ए. करने के बाद ये सामाजिक धरातल पर चल रही रूढ़िवादी और सामन्तवादी व्यवहार की लड़ाई में खुलकर आगे आये और सामाजिक विकास का मार्ग ढूंढने लगे। सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में किसानों की भलाई के लिए तथा केस-मुकदमा के कारण ये कई बार जेल भी गए। इन्हें सफलता भी मिली। समाज-सेवा को हृदय में बसाकर ये सामाजिक विकास का दूसरा रास्ता अपनाए और 2001 ईस्वी के बाद साहित्य -लेखन क्षेत्र में अग्रसर हुए। 2008 ईस्वी से अनेक पत्र -पत्रिकाओं में इनकी रचना प्रकाशित होने लगी। ..आज ये साहित्य-नक्षत्र की जिस ऊंचाई पर पहुँच चुके हैं, एक स्वप्न-सा प्रतीत होता है। मिथिला-मैथिली के विकास में इनका योगदान अद्वितीय है।



बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री रामेश्वर प्रसाद मण्डल जी का जन्म मधुबनी जिले के प्रसिद्ध प्रखण्ड- फुलपरास के अधीनस्थ गाँव-मुशहरनिया में 12 जुलाई 1956 ईस्वी में एक मजदूर-किसान के यहाँ हुआ। मायटुअर बालक रहते हुए भी संघर्ष करते हुए श्री सागर सार्वजनिक उच्च विद्यालय नरहिया से 1973 ईस्वी में इन्होंने मैट्रिक पास किया। इसके बाद निर्मली कालेज निर्मली से बी. ए. किया और पारिवारिक दयनीय स्थिति को देखकर होम ट्यूशन से जुड़ गया तथा कई पब्लिक स्कूल का प्राचार्य बन गए। दोस्तों की नैसर्गिक सहानुभूति पाकर एल.एन.एम.वि. कामेश्वर नगर, दरभंगा से एम.ए. (दर्शनशास्त्र) किया और प्राइवेट कॉलेज का व्याख्याता- सह विभागाध्यक्ष बन गए। 1993 ईस्वी में लोक सेवा आयोग पटना द्वारा सहायक शिक्षक के पद पर इनका चयन हुआ। अब ये सरकारी शिक्षक बन गए। एक शिक्षा-प्रेमी होने के नाते अपने विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा सदैव बालिका-शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाते रहें। सेवा के अन्तिम क्षण में ये उत्क्रमित उच्च विद्यालय, बसुआरा से 2016 ईस्वी में अवकाश प्राप्त किया। सम्प्रति ये पद्मावती आर.पी. शैक्षणिक संस्थान निर्मली का निदेशक हैं।



पल्लवी प्रकाशन
जे.एल.नेहरू मार्ग, तुलसी भवन
निर्मली, सुपौल, बिहार : 847452

मूल्य- 250/-

